मैथिली शरण गुप्त

[प्रबन्ध काव्यों के प्रमुख पात्र और उनकी प्रवृत्तियां]

डॉ० राधेश्याम शर्मा

मंगल प्रकाशन
गोविन्द राजियो का रास्ता,
जयपुर — १

प्रकाशक
उमराव सिंह मंगल
सञ्चालक
मंगल प्रकाशन
गोविन्द राजियो का रास्ता,
जयपुर १

प्रथम संस्करण १९७५
मूल्य
१५-००

मुद्रक
मंगल प्रेस
नाहर गढ रोड़,
जयपुर- १

समर्पण

"हा वत्स ! हा वत्स !! इति सा रुदन्ती,
दिवंगता मे जननी सुपूज्या ।
तस्या स्मृति लक्ष्यमहं विधाय,
प्रस्तौमि पुष्पं विदुषां सयत्ने"

—राधेश्याम शर्मा

भूमिका

आधुनिक कविता मे अर्वाचीन पात्रों का समावेश हुआ है किन्तु गुप्तजी के काव्यो के पात्र प्रायः प्राचीन हैं यद्यपि 'अजित' तथा 'आजलि और अर्घ्य' जैसी अन्य रचनाओं में अर्वाचीन पात्रो का प्रयोग भी हुआ है, परन्तु ऐसे पात्र उंगलियो पर गिनने योग्य ही हैं। इनके पात्र वर्गपात्र हैं। जो मानव-वर्ग, दैत्य-वर्ग, देव-वर्ग, ऋषिवर्ग, कृषक-वर्ग, राजा-वर्ग आदि के प्रतिनिधि बनकर आये है। गुप्तजी ने इन पात्रो को पुराण और इतिहास के विभिन्न क्षेत्रो से चुना है। जहाँ काव्य मे पात्रो का प्रश्न उठता है वहाँ काव्य का प्रबन्ध रूप हमारे समक्ष स्वय आ जाता है। गुप्तजी की प्रतिभा सर्वतोमुखी है। उन्होने नाटक, पद्य, मुक्तक सभी कुछ लिखे हैं किन्तु इस प्रगीतकाव्य के काल मे प्रायः प्रबन्ध काव्य ही लिखे हैं, यह उनकी अपनी विशेषता है। प्रबन्ध-काव्य लिखने का कारण यह है कि वे भारतीय-संस्कृति का स्वरूप प्रस्तुत करना चाहते हैं जिसका स्वीकरण प्रबन्ध काव्य मे सरलता से हो सकता है।

यो तो गुप्तजी के काव्य की सीमाएं प्रायः पुराणो से निर्मित हैं, किन्तु उसका लक्ष्य आदर्शवादी है। उनका नाम भक्त कवियो में लिया जा सकता है और राम उनके इष्ट देव हैं। अतएव उनको राम काव्य परम्परा के कवियो मे परिगणित करने मे कोई आपत्ति दृष्टिगोचर नही होती। राम जनता को वर्तमान समय मे अधिक प्रिय हैं क्योकि राम भारतीय संस्कृति के प्रतिनिधि के रूप मे अवतरित हुए हैं, परिणामत गुप्तजी के प्रत्येक प्रबन्ध काव्यो की पृष्ठभूमि भारतीय संस्कृति तथा भारतीय आदर्श ही हैं। वे अपने प्रबन्ध काव्यो मे किसी एक प्रमुख पात्र को लेकर चले हैं एव उस पात्र विशेष को किस प्रकार से आदर्शवादी, उदात्त भावनाओं वाला, भारतीय सस्कृति का प्रतिनिधि बनाया जाय, यह गुप्तजी का प्रयास परिलक्षित होता है। उनके प्रबन्ध काव्यो मे कोई न कोई पात्र, चाहे वह पुरुष-पात्र हो या नारी, ऐसा अवश्य होता है जो भारतीय सस्कृति के किसी पहलू विशेष का प्रतिनिधित्व करता है। अतः प्रस्तुत विषय के अन्तर्गत गुप्तजी के प्रबन्ध-काव्य और इस प्रकार के प्रमुख पात्रो का अध्ययन किया गया है।

विषय की आवश्यकता —

गुप्तजी मे प्राचीन के प्रति पूज्य भाव तथा नवीन के प्रति उत्साह है। उनमें सामजस्य की प्रवृत्ति अतः उनके पात्र है प्राचीन भारतीय संस्कृति तथा आदर्शवाद के प्रतिनिधि तो हैं ही, इसके साथ साथ वे आधुनिक युगीन प्रवृत्तियो से भी किसी न किसी

रूप मे आकलित हैं। पौराणिक तथा ऐतिहासिक कथावस्तु को लेकर चलने वाले काव्य वर्तमान की अनेक समस्याओ का निराकरण प्रस्तुत करने मे समर्थ होते हैं। यह कहना सगत ही होगा कि जहाँ गुप्तजी के काव्यो मे प्राचीन वैभव को दुन्दुभी बजती है, वहा वर्तमान को सन्देश भी मिलता है। आवश्यकता इस बात की है कि गुप्तजी के प्रबन्ध-काव्यो के प्रमुख पात्रो मे आधुनिक युगीन तथा कुछ मौलिक प्रवृत्तिओ का समावेश कहा तक और किस प्रकार हो पाया है, इसका निरूपण किया जाय।

गुप्त जी के प्रबन्धो के पात्र प्रायः आदर्शवादी हैं किन्तु फिर भी वे आधुनिक युगीन विशेषताओं से आकलित हैं। यद्यपि कवि "नियति कृत नियम रहिता" होता है तथा वे अपनी रुचि के अनुकूल प्रथित पात्रो मे भी भगिमाए देकर उनकी सृष्टि करता है, जैसा कि अधोलिखित श्लोक से स्पष्ट है :—

> अपारे काव्य ससारे, कविरेव प्रजापतिः
> यथास्मै रोचते विश्वं तथेदं परिवर्तते —अग्निपुराण (३३६–१०)

तथापि वह समाज के हित का विस्मरण नही कर सकता। उसकी कला, जीवन तथा समाज से प्रभावित होती है तथा समाज के लिए होती है। विशेषतः गुप्तजी की कला तो समाज के लिए ही है, 'कला कला के लिए' कह कर उनकी कला को स्वार्थिनी बनाना है।

प्रस्तुत शोध-निबन्ध को, विषय-विवेचन और मूल्याकन की सुविधा से पाच भागो मे विभक्त किया गया है।

प्रथम अध्याय मे गुप्तजी के काव्य की पीठिका पर विचार किया गया है। इसका एक मात्र कारण यह है कि आधुनिक कवियो के परिपार्श्व मे गुप्तजी के काव्य की पीठिका का अवलोकन, प्रस्तुत विषय के मूल्याकन को और अधिक सरल बना देता है।

द्वितीय अध्याय मे मैंने गुप्तजी के प्रबन्धो का विवेचन किया है। गुप्तजी की द्वापर जैसी एक दो रचनाए जिनका प्रबन्धत्व अधिकाश विद्वानो को स्वीकार नहीं, इस निबन्ध मे स्थान नही पा सकी हैं।

तृतीय अध्याय मे प्रत्येक प्रबन्ध के प्रमुख पात्रो का निर्धारण किया गया है। प्रमुख पात्रो से तात्पर्य नायक तथा अन्य उसकी समता वाले पात्रो से है। इस प्रकार किसी प्रबन्ध मे एक से अधिक पात्रो का विवेचन भी कर दिया गया है।

चतुर्थ अध्याय मे गुप्तजी के प्रमुख पात्रो का प्रावृतिक विवेचन प्रस्तुत किया गया। 'प्रवृति' शब्द से तात्पर्य यहा पात्रो की मौलिक प्रवृतियो से है। जो समयानुसार परि- होती रहती है, किन्तु मूल प्रवृति स्थायी रहती है। अतएव पात्रो की मूल प्रवृति के साथ उसकी काव्य विशेष मे व्यक्त हुई गौण प्रवृति का भी निरूपण किया है।

पंचम अध्याय मे पात्रों का तुलनात्मक अध्ययन किया गया है। तुलनात्मक न से तात्पर्य यहा गुप्तजी के उस पात्र विशेष की प्रवृति का अध्ययन है जो उनकी से अधिक रचनाओं मे अवतरित हुआ है। यद्यपि यथाशक्ति अन्य कवियो के काव्यो में र गुप्तजी के पात्रो का भी तुलनात्मक अध्ययन दे दिया गया है। इस प्रकार विषय गौरव के निर्वाह करने का पूर्ण प्रयास किया गया है। विषय की नवीनता एव उपयो- ता, से विद्वान स्वय अभिज्ञ हैं।

मुझे इस विषय मे राजस्थान विश्व विद्यालय के वर्तमान हिन्दी विभागाध्यक्ष ० सरनामसिंह शर्मा 'अरुण' से प्रेरणा और सहायता मिली है तथा 'दीप' और 'निर्मल क मित्रो ने भी मुझे यथोचित सहायता दी है। मैं इनके प्रति हार्दिक आभार व्यक्त हूं।

भाई उमराव सिंह मंगल के प्रति कृतज्ञता-ज्ञापन में अपना कर्तव्य समझता हूं बडे श्रम पूर्वक इस ग्रन्थ का प्रकाशन किया है। अत्यन्त व्यस्त होते हुए भी स्वय प्रूफ रीडिंग का उत्तर दायित्व भी वहन किया है। यह सब उनकी उदारता प्रतीक है।

दिपावली
१३—११—७४

विनयावनत
राधेश्याम शर्मा

विषय सूची

प्रथम अध्याय

गुप्तजी के काव्य की पीठिका

राष्ट्रकवि श्री मैथिलीशरण गुप्त उन साहित्यिक विभूतियो मे से हैं जिन्होने ।नक हिन्दी-कविता को एक नियत रूप ही नही वरन् भारतीय सस्कृति को आधुनिक में भी फिट किया है। भाषा को प्रगति देने और रीतिकालीन परम्पराओ मे होकर को नवीन मार्ग पर लाने में इनको प्रमुख श्रेय मिला है। इन्होने आधुनिक कविता शैली और रूप सम्बन्धी नये प्रयोग करके प्राचीन और नई शैली का ऐसा मिश्रण ५। है जिसे देखकर प्राचीनतावादी इन्हे प्रगतिशील और प्रयोगवादी इन्हें आदर्शवादी बिना नही रह सकते हैं। कहने की आवश्यकता नही कि गुप्तजी ने इतिहास, सस्कृति, प्रेम, नैतिकता, साहित्य के साथ साथ गाधीवाद के प्रसार मे भी अनूठा योग दिया है। .क विशेष योग रस की दिशा में भी है। जिस दिशा की ओर इनके काव्य-गुरू ने सके। था उसी दिशा में गुप्तजी ने प्रगति की।

खड़ी बोली काव्य के परिपार्श्व में —

शताब्दियो से हिन्दी-कविता भक्ति या शृंगार के रंग में रगी चली आरही थी। ~ल चुम्बन और आलिगन, रति और विलास, रोमाच और स्वेद, स्वकीया और परकीया कढियो में जकडी हुई हिन्दी कविता करुण क्रन्दन कर रही थी। वह समाज से पर्याप्त ~ हो चली थी। भारतेन्दु तथा उनके कवि-मण्डल से रीतिकालीन परम्परा का पूर्ण-उन्मूलन न हो सका। भारतेन्दुजी ने रीतिकालीन परम्परा में कविता को किन्तु भक्ति कालीन भाव-परम्परा का नवोत्थान था। इसके साथ साथ वे नवयुग की के अग्रदूत कहे जा सकते हैं। भारतेन्दु काल में आकर हिन्दी-कविता ने एक प्रान्त का जीर्ण वस्त्र। उतार कर लोक-भाषा, राष्ट्र-भाषा का परिधान धारण किया। ना। बाह्य-रूप परिवर्तन कर लिया। इस दृष्टि से भारतेन्दु तथा द्विवेदी जी को हिन्दी ~वत का शकर और भगीरथ कहा जा सकता है। उसका अवतरण भारतेन्दु के समय मे किन्तु तत्पश्चात् वह द्विवेदी जी के पीछे पीछे चली।[1]

१ – डा० सुधीन्द्र, हिन्दी कविता मे युगान्तर, पृ० ४०–४१।

अंग्रेजी-साहित्य मे जिस प्रकार फ्रेंच रिवाल्यूशन (French Revolution) प्रसिद्ध है इसी प्रकार की एक क्रान्ति हिन्दी-काव्य क्षेत्र मे भी हुई, जिसका प्रभाव आचार्य द्विवेदी जी पर अमिट रूप से पडा। वे सुरम्य तथा रस से युक्त, विचित्र वर्णाभरणों से युक्त अलौकिक आनन्द प्रदान करने वाली कान्त कविता के लिए विकल हो गये।[1]

श्री मैथिलीशरण गुप्त ने महावीर प्रसाद के प्रसाद को स्वीकार किया। सियाराम शरण गुप्त, हरिऔध, श्रीधर पाठक, रामनरेश त्रिपाठी आदि कवि उनसे प्रभावित हुए। प्रसादजी, द्विवेदीजी से प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित नहीं हो पाए। कवि सुमित्रानन्दन पन्त, जो द्विवेदी युग के साध्य-तारक थे, मैथिलीशरण गुप्त की कविताओ से सम्मोहित होकर ही कवि-पथ पर प्रधावित हुए। हिन्दी के अति दीर्घकालीन इतिहास मे खड़ी बोली कविता की परम्परा का आरम्भ अमीर खुसरो की पहेलियो से ही माना जा सकता है।[2] कबीर ने खडी बोली को ग्रहण किया है। भूषण तथा मुसलमान कवियो की कविता में भी खडी बोली का क्षीण स्वर श्रवण-पथ में आता है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने खडी बोली में "दशरथ विलाप" कविता लिखी है।[3]

भारतेन्दुजी खडी बोली का प्रयोग गद्य मे कर पाये। कविता में भी वे खडी बोली को अपना लेते किन्तु काल की कराल गति ने उन्हे अर्द्ध-विकसित अवस्था मे ही झपट लिया। द्विवेदी जी की खडी बोली की सर्व प्रथम कविता "बलीवर्द" है। खडी बोली में परिमार्जित भाषा का प्रयोग करने पर द्विवेदी जी ने अधिक बल दिया।

---

१ – आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी, सरस्वती जून १६०१ —

सुरम्यरूपे! रसराशि-रंजिते! विचित्र वर्णाभरणे! कहाँ गई?
अलौकिकानन्द विधायनी महा— कवीन्द्र-कान्ते! कविते! अहो कहाँ?

२ – एक थाल मोती से भरा, सब के सिर पर औंधा धरा।
चारो ओर वही थाली फिरे, मोती उससे एक न गिरे।।
— संकलित, हिन्दी कविता मे युगान्तर, पृ० ५०।

कद्दू काटि मृदग बनाया, नीबू काट मजीरा,
सात तरोई मगल गावे, नाचे बालम खीरा।
— संकलित हिन्दी कविता मे युगान्तर, पृ० ५०।

३ – आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, 'दशरथ विलाप' शीर्षक कविता से —

कहा हो ऐ हमारे राम प्यारे?
किधर तुम छोड कर मुझको सिधारे!
बुढापे मे यह दुख भी देखना था।
इसी को देखने को मैं बचा था।
— संकलित, हिन्दी कविता में युगान्तर, पृ० ५२।

आगे चलकर पन्त, निराला, महादेवी वर्मा और श्रीधर पाठक आदि ने खड़ी बोली को अपनाया किन्तु वह मुक्तक-काव्य तक ह' सीमित रही। हरिऔध तथा प्रसाद जी ने खडी बोली को प्रबन्ध-काव्य में स्थान दिया किन्तु उसका प्रचुर प्रयोग तथा सरल रूप नही आ पाया, इन दो विशेषताओ को लाने का श्रेय गुप्तजी को है। इन्होने खडी बोली में सरलता तथा तत्समता का ध्यान रखते हुए उसे प्रचुर रूप में प्रबन्ध काव्यो में स्थान प्रदान किया। अतः कहने की आवश्यकता नही कि खडी बोली मे कविता करने वाले कवियो में गुप्तजी का एक प्रमुख स्थान है।

संस्कृति की भूमिका पर —

अनेक विद्वानों ने सस्कृति की भिन्न भिन्न परिभाषाए दी हैं। दिनकर जी ने जीवन के तरीके को ही सस्कृति माना है। उनका कहना है कि असल मे सस्कृति जिन्दगी का एक तरीका है और यह तरीका सदियो मे जमा होकर उस समाज में छाया रहता है जिसमें हम जन्म लेते हैं।[1] 'कल्याण' हिन्दू-सस्कृति विशेषाक मे लौकिक, पारलौकिक, धार्मिक, आध्यात्मिक, आर्थिक, राजनैतिक अभ्युदय के उपयुक्त देहन्द्रिय, मन, बुद्धि और अहंकार आदि की भूषण-भूत् सम्यक् चेष्टाओ तथा हलचलो को ही सस्कृति कहा गया है।[2] आचार्य मंगलदेव शास्त्री आदर्शों की समष्टि को ही सस्कृति के नाम से अभिहित करते हैं। परन्तु इन सभी परिभाषाओ की अपेक्षा प० जवाहरलालजी नेहरू की परिभाषा अधिक समीचीन प्रतीत होती है। उनका मत है कि भारतीय संस्कृति की पीठिका प्रमुख दर्शन, रीति रिवाज, इतिहास, पुराण आदि के सामजस्य से निर्मित है। संस्कृति परम्परागत प्राप्त होती है, जिसको कोई भी संकट उखाड फेक देने में समर्थ नही हो पाता है।[3]

उपर्युक्त सस्कृति-विषयक विचार-धाराओ से यह स्पष्ट है कि सस्कृति जातीय होती है, व्यक्तिगत नही। वह सभ्यता से सर्वथा पृथक् है। दर्शन, भक्ति, धर्म, नीति, साहित्य, रीति-रिवाज और पूर्वजो का चरित्र उसके अग प्रत्यग हैं।

आधुनिक-युग के कवियो मे हरिऔध जी, प्रसादजी तथा गुप्तजी को संस्कृति प्रिय कवि कहा जा सकता है। हरिऔध जी ने तो भारतीय सस्कृति के एक प्रमुख अग आदर्शवाद का स्वीकरण अपने प्रिय प्रवास काव्य में बडे सुन्दर रूप मे किया है।[4] अत. सस्कृति के आशिक रूप आदर्श की ओर उपाध्यायजी की ललक रही। प्रसादजी ने इतिहास का आधार लेकर प्राचीन रीति रिवाज तथा धर्म आदि का उल्लेख किया है। किन्तु प्रायः यह

---

१ – श्री दिनकर, सस्कृति के चार अध्याय, पृ० ६५३।

२ – स्वामी करपात्री जी, कल्याण, हिन्दू सस्कृति विशेषाक, पृ० ३५।

३ – प० जवाहर लाल नेहरु, डिस्कवरी आफ इण्डिया, पृ० ५५–५६।

४ – साकेत और प्रिय प्रवास की आदर्शगत तुलना, विद्यावाचस्पति श्रीवल्लभ शर्मा।

सब उनके नाटको मे झलकता है । उनके प्रबन्ध काव्यो में तो भारतीय संस्कृति को व्यवस्थित रूप मे स्थान प्राप्त नही हो पाया है । 'कामायनी' में यत्र-तत्र संस्कृति के अंश मिल जाते हैं जहा श्रद्धा मनु को सब के सुख में सुखी तथा सबको सुखी बनाने का उपदेश देती है ।[1] किसी अपरिचित व्यक्ति की तृप्ति के लिये अग्निहोत्र से अवशिष्ट अन्न को रख आना सस्कृति-प्रेम ही है,[2] क्योकि इससे हमारे पूर्वजो के स्वभाव का आभास मिलता है । उनके प्रबन्ध काव्यों मे सस्कृति की अपेक्षा आधुनिक-युगीन प्रवृत्तियो को अधिक प्रश्रय मिला है । नाटकों ने इस ओर अवश्य कदम बढ़ाया है । गुप्तजी ने संस्कृति के अधिकतम अंशो पर प्रकाश डाला है । किसी भी प्रबन्ध काव्य मे भारतीय-संस्कृति का कोई न कोई स्वरूप परिलक्षित हो ही जाता है ।

संस्कृति का स्वरूप—

गुप्तजी गृहीत सस्कृति रामोपासक कालिदास और तुलसीदासजी से प्रभावित है । रामायण, महाभारत की कथाओ को लेकर चलने वाले गुप्तजी, संस्कृति-चित्रण में, पूर्णरूपेण सफल हुए हैं । अपने प्रबन्ध-काव्य के एक पात्र विशेष को भारतीय सस्कृति का परमोपासक बनाना चाहते है । 'जयभा त' का युधिष्ठिर तथा 'साकेत' के राम, लक्ष्मण, उर्मिला आदि इसी प्रकार के पात्र है । अत. सस्कृति-प्रिय कवियो मे गुप्त जी का प्रमुख स्थान है । इस सम्बन्ध मे आचार्य कमलाकान्त पाठक के ये विचार प्रेक्षणीय हैं —

" सागर मे जिस भाति विविध जल-धाराएं मिलकर एक रस हो जाती हैं, इसी प्रकार गुप्तजी के काव्य मे जाति, धर्म, भाषा, देश-सस्कृति मत और सिद्धान्त अथवा वाद और विवाद तथा अतीत और वर्तमान सभी की विभिन्नता विलीन होकर अभिन्न हो जाती है, क्योकि वे उदाराशयी, विश्व-मानवता के कवि हैं । लोक-कल्याण उनका उद्देश्य है । प्रेम, करुणा, शान्ति और व्यवस्था उनका प्रतिपाद्य है । "[3]

---

१ – श्री जयशंकर प्रसा , कामायनी, कर्म सर्ग, पृ० १५२ ।

औरों को हंसते देखो मनु,
हंसो और सुख पाओ ।
अपने सुख को विस्तृत करलो,
सबको सुखी बनाओ ।

२ – श्री जयशंकर प्रसाद, कामायनी, आशा सर्ग, पृ० ४२ ।

अग्नि होत्र अवशिष्ट अन्न कुछ,
कहीं दूर रख आते थे ।
होगा इससे तृप्त अपरिचित,
समझ सहज सुख पाते थे ।

३ – डा० कमला कान्त पाठक, मैथिलीशरण गुप्त व्यक्ति और कवि, पृ० १३० ।

आदर्शवादी कवियों में गुप्तजी का स्थान —

आदर्शवाद की वृत्ति इस काल के कवियो को काव्य लिखने की प्रेरणा देती रही है। मुक्तक-काव्य मे तो केवल उद्‌बोधन और उपदेश मात्र दिये जा सकते हैं, परन्तु आख्यान के आवरण में उपदेश देना अधिक अभिनन्दनीय होता है क्योकि पाठक पर व्यंजना से प्रभाव पडता है। आधुनिक युग के कवियो ने आदर्शवादी विचार-धारा को दोनों प्रकार के काव्य से अभिव्यक्त किया है। गुप्तजी ने आदर्शवादी विचारधारा को 'भारत-भारती' तथा 'साकेत' से ध्वनित किया है। 'भारत भारती' का आदर्श तथा 'साकेत' एव 'जयभारत' का आदर्श क्रमश. मुक्तक तथा प्रवन्ध से अभिव्यक्त हुआ है।

आदर्शवाद के विभाग कर लेने पर ठीक प्रकार से ज्ञात हो सकेगा कि किस कवि ने आदर्शवाद के किस क्षेत्र को कहा तक अपनाया है। आदर्श निम्न प्रकार के हो सकते हैं—

(अ) काव्यादर्श (ब) कलादर्श
(स) सामाजिक-आदर्श (द) प्रेमादर्श
(य) नैतिक- आदर्श (फ) राष्ट्रीय- आदर्श
(ब) चारित्रिक- आदर्श।

स्थूल रूप मे दृष्टिपात किया जाय तो हरिऔध जी ने 'प्रिय-प्रवास' में चारित्रिक आदर्श की प्रतिष्ठापना की है। कृष्ण का आदर्श चरित्र प्रस्तुत करने में उनको अपने न्यायालय मे कंस, कालीनाग, व्योमासुर, हयासुर आदि विरोधी पक्ष के पात्रों को लाना पडा। आदर्शवाद की दृष्टि से उपाध्यायजी के 'चुभते चौपदे' नहीं भुलाए जा सकते। उनमें नीति का आदर्श उसी प्रकार निहित है जिस प्रकार रत्न मे आभा। सामाजिक आदर्श की प्रतिष्ठापना भी अत्यन्त सुन्दर ढ ग से हुई है। जाति, समाज, देश की उन्नति ही कवि का एक मात्र लक्ष्य रही है। 'प्रिय प्रवास' का नवम सर्ग नैतिक आदर्श से परिव्याप्त है। राधा का पवन-दूत आदर्शवादी दूत है। प्रेम का आदर्श प्रसादजी के 'प्रेम पथिक' में प्रतिष्ठित हैं परन्तु वहा वह शाब्दिक होने के कारण इतना प्रभाव उत्पन्न नहीं करता जितना राम नरेश त्रिपाठी के 'मिलन' और 'पथिक' मे प्रेम-प्रणय का आदर्श चरितार्थ हुआ है। द्विवेदी-कालीन कविता का परिष्कारवाद (Puritinism) प्रेम के रूप में व्यक्त होता है।

गुप्तजी ने अपने काव्य मे उपर्युक्त सभी आदर्श के पहलुओ को स्थान प्रदान किया है। गुप्तजी ने काव्य का आदर्श 'हिन्दू' काव्य की भूमिका में व्यक्त किया है —

"सुन्दरं को शिवं अर्थात् जन-मंगल-दायक होना आवश्यक है यदि सौन्दर्य स्वयं एक बडा भारी गुण है तो गुण भी एक बडा भारी सौन्दर्य है, यही शिव काव्य का उद्देश्य है।"

कलादर्श —

'साकेत' के प्रथम सर्ग मे ही कविवर गुप्तजी ने काव्य का आदर्श हमारे समक्ष प्रस्तुत किया है :—

हो रहा है जो जहा, सो हो रहा,
यदि वही हमने कहा तो क्या कहा ?
किन्तु होना चाहिए कब क्या, कहा,
व्यक्त करती है कला ही यह यहा । [१]

प्रेम का आदर्श तथा सामाजिक आदर्श आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की इन पक्तियो मे देखा जा सकता है जिन पर 'भारत-भारती' की पूर्ण छाप है —

सबके होकर रहो सहो सब की व्यथा ,
दुखिया होकर सुनो सभी की दुख-कथा ।
परहित मे रत हो, प्यार सबको करो,
जिसको देखो दुखी, उसी का दुख हरो ।
वसुधा बने कुटुम्ब प्रेम-धारा बहे,
मेरा तेरा भेद नही जग मे रहे । [२]

राष्ट्रीय-आदर्श और चारित्रिक-आदर्श को तो गुप्तजी ने अपने काव्य में सवत्र स्थान प्रदान किया है । इन दो आदर्शों के प्रति माना कवि की ललक है । यदि राष्ट्रीय आदर्श भावना का दर्शन करना है तो दादा श्यामसिह को इन पक्तिया को देखा जा सकता है —

वह जननी तो मुक्त हुई पर हाय विधाता,
रही बधी की बधो गऊ सी भारत माता । [३]

चारित्रिक-आदर्श का दर्शन करने के लिए 'जय भारत' को देखना पर्याप्त है। युधिष्ठिर का चारित्रिक-आदर्श अत्यधिक उन्नत है । 'साकेत' की तपस्विनी उर्मिला में जो चारित्रिक आदर्श दिखलाया गया है, वह बेजोड है । कन्दर्प के प्रति कही गई ये पंक्तियां प्रेक्षणीय हैं —

रूप - दर्प कन्दर्प, तुम्हे तो मेरे पति पर वारो ।
लो, यह मेरी चरण-धूलि उस रति के सिर पर धारो ।। [४]

---

१ – गुप्त जी – साकेत, प्रथम सर्ग, पृ० २१ ।
२ – ' प्रेम ' शीर्षक कविता से संकलित ।
३ – गुप्त जी – अजित, पृ० ४३ ।
४ – गुप्त जी – साकेत, नवम् सर्ग, पृ० २९२ ।

वह तो अपने प्रियतम के सन्तोष मे ही सन्तोष का अनुभव-करने वाली भारतीय आदर्श-ललना का रूप हमारे समक्ष प्रस्तुत करती है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि आदर्शवादी कवियो मे गुप्तजी का प्रथम स्थान है। सबसे अधिक महत्वपूर्ण बात तो यह है कि उनके आदर्श अत्यन्त सहज, स्वाभाविक तथा सुलभ हैं।

गाँधीवादी कवियों में गुप्त जी —

गान्धीजी का दर्शन हमको आत्म-त्याग, बलिदान, अहिंसा का पाठ पढ़ाता है। उसमे परोत्पीडन, हिंसा तथा असत्य को स्थान नही। अछूतोद्धार की भावना, दीनो के प्रति प्रेम गान्धीजी के प्रिय आदर्श रहे। इनको गुप्तजी के साथ-साथ आधुनिक कवि किस प्रकार अपना पाए है यह द्रष्टव्य है। उपन्यास के क्षेत्र में प्रेमचन्दजी ने गान्धीवाद को प्रश्रय दिया। प्रसाद, निराला एव दिनकर आदि आधुनिक-कवि गान्धीवादी विचारधाराओ को उस सीमा तक नही अपना पाए, जिस सीमा तक गुप्तजी। गान्धीवादी विचार-धाराए उनके काव्यो में मुखर हो उठी हैं। इसका एक मात्र कारण यह भी है कि वे अपने व्यक्तिगत जीवन मे भी गान्धीजी के सपर्क में आते रहे। बापू के दिवगत हो जाने पर लिखित 'आजलि और अर्घ्य' रचना यदि एक ओर उनके कृत्यो का वर्णन करती है तो दूसरी ओर अश्रु विमोचन करती हुई बापू की दिवगत आत्मा को शान्ति का सन्देश देती है। गान्धीजी की सहानुभूति अछूतो, कृषकों तथा नारियो के प्रति विशेष रूप से रही, अतएव गुप्तजी ने भी अपनी सहानुभूति का पात्र इन सभी को बनाया।

कृषको के जीवन की कथा को लेकर यदि प्रेमचन्द ने 'गोदान' का प्रणयन किया तो गुप्तजी ने 'किसान' काव्य का जिसमे किसान के जीवन पर आलोचनात्मक दृष्टि से प्रकाश डाला गया है, जैसा कि निम्नलिखित पक्तियो से अभिहित होता है —

> जिस खेतो से मनुज मात्र अब भी जीते हैं,
> उसके कर्ता हमी यहाँ आसू पाते हैं।
> शिक्षा को हम और हमे शिक्षा रोती है,
> पूरी बस वह घास खोदने में होती है।
> हा हा खाना और सर्वदा आसू पीना,
> नही चाहिये नाथ! हमे अब ऐसा जीना।[१]

गुप्तजी ने नारियो के प्रति सम्मान की भावना भी अभिव्यक्त की। उन्होंने नारी को अपने काव्य का विषय बनाकर "यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता" की भावना की प्रतिष्ठा की। नारी अवस्था का चित्रण इन पक्तियो से किया गया है —

> अबला-जीवन, हाय तुम्हारी यही कहानी।
> आचल मे है दूध और आखों में पानी॥[२]

---

१ – गुप्त जी – किसान, पृ० ५।
२ – गुप्त जी – यशोधरा, पृ० ४७।

किन्तु उस अबला नारी को इन शब्दो मे आश्वासन देकर उत्साह मे अभिवृद्धि की है :—

दीन न हो गोपे, सुनो, हीन नही नारी कभी।
भूत दया मूर्ति वह मन से शरीर से ॥ [१]

अहिंसा और त्याग की अभिव्यक्ति तो गुप्तजी के काव्य मे सर्वत्र किसी न किसी रूप में प्राप्त हो ही जाती है। गान्धीजी की अहिंसात्मक राजनीति के उद्घोष के साथ साथ गुप्तजी ने देश का भी जय-गान प्रस्तुत किया —

हमारी असि न रुधिर रत हो,
न कोई कभी हताहत हो।
शक्ति से शक्ति न अवनत हो,
भक्तिवश जगत एक मत हो।
वैरियो का वैर क्षय हो,
दया-मय भारत की जय हो। [२]

अतएव स्पष्ट है कि आधुनिक कवियो में से किसी ने गान्धीवादी विचारो को इतनी व्यापकता से अपने काव्य में अभिव्यक्त नही किया है। गान्धीवादी विचारधारा वाले कवियों में गुप्तजी महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं।

राम-भक्त कवियों में —

आधुनिक युग के रामभक्त-कवियो में 'हरिग्रोध' तथा गुप्त जी को प्रमुख रूप से लिया जा सकता है। यद्यपि गोस्वामी जी तथा केशव को भी राम भक्त कवियो मे गिना जा सकता है किन्तु गुप्त जी के समकालीन न होने के कारण वे प्रस्तुत विषय के क्षेत्र से बाहर हैं। 'हरिग्रोध' जी ने 'वैदेही बनवास' काव्य में राम कथा को ग्रहण किया है। उसमें समस्त राम-काव्य की झलक नही मिलती है। गुप्तजी की वृत्ति राम-काव्य मे अधिक रमी है। इसका एक मात्र कारण है कि कवि के पिता राम के परमोपासक थे। परिवार के सभी सदस्य वैष्णव-मत के अन्तर्गत राम को आराध्य मानते थे। परिणामत गुप्तजी परिवार के प्रभाव से अछूते नही रह पाए। उन्होने अपने काव्यो के आरम्भ मे मंगलाचरण के रूप में राम तथा सीता की वन्दना प्रस्तुत की है गुप्तजी के मतानुसार तो राम कथा ऐसी अपार है कि उसमे नवीनता का अन्त नही। जितने अधिक उसमें गोते लगाए जावें उतनी ही नवीन उद्भावनाएं आ जाती हैं। तभी तो 'साकेत' के मुख पृष्ठ पर ही गुप्तजी ने यह लिख दिया हैं —

---

१ – गुप्त जी – यशोधरा, पृ० १४५।
२ – भारत की जय से संकलित।

राम तुम्हारा वृत्त स्वयं ही काव्य है,
कोई कवि बन जाय सहज सम्भाव्य है। [1]

गुप्तजी से पूर्व राम-कथा को लेकर प्रमुख रूप से चलने वाले गोस्वामी तुलसी दास हैं। अत: प्रेक्षणीय यह है कि गुप्तजी ने तुलसी गृहीत कथा को ज्यों की त्यो स्वीकार किया है अथवा उसमें कुछ परिवर्तन प्रस्तुत किये हैं। गोस्वामी जी ने अपने रामचरित-मानस में उर्मिला का भुला दिया तथा कैकेयी के चरित्र को इतना गिरा दिया कि उसके नाम से 'मानस' का पाठक जलने लगता है किन्तु गुप्तजी के 'साकेत' के पाठक के समक्ष ऐसी बात नही आती। उन्होने राम के प्रति आदर्श तथा पूज्य भावना के संचार के साथ, उर्मिला के आदर्श चरित्र का भी प्रतिष्ठा की है। यद्यपि इस प्रकार के प्रयत्न में 'साकेत' का कलेवर महाकाव्य की दृष्टि से डगमगाता सा प्रतीत होता है किन्तु शिथिल मापदण्डो से नापने पर वह सध जाता है। साकेत मे उर्मिला तथा राम दोनो को प्रमुख रूप मे प्रस्तुत करके गुप्तजी ने पाठको के लिए समस्या तथा आलोचको के लिए क्षेत्र विस्तीर्ण किया है। यह निस्सन्देह कवि की नई देन है। गोस्वामीजी की कैकेयी स्वार्थवश राम का निर्वासन करती है और किसी भी अवस्था पर पहुच कर उसके हृदय का कालुष्य निवारण नही हो पाता है। परन्तु 'साकेत' की कैकेयी की मति पर मन्थरा के कुचक्रो का पर्दा पड जाता है और चित्रकूट मे राम को तपस्वी वेष में देख कर ज्ञान के प्रकाश से वह पर्दा हट जाता है वह भाव विह्वला होकर राम से घर लौट चलने का आग्रह करती है। जब राम लौटना पसन्द नही करते तब वह भरत के सम्बन्ध से राम को लौट जाने को बाध्य करती है

हाँ, जनकर भी मैंने न भरत को जाना।
सब सुनलें तुमने स्वयं अभी यह माना।।
यह सच है तो फिर लौट चलो घर भैया।
अपराधिन मैं हूँ तात, तुम्हारी मैया। [2]

इस प्रकार यह देखा जा सकता है कि उर्मिला का महत्व प्रतिष्ठापन तथा कैकेयी का चरित-तरिष्करण गुप्तजी की मौलिकता के द्योतक हैं। रामकथा को लेकर चलने वाले आधुनिक कवियो में यदि गुप्तजी को सर्वप्रथम स्थान प्रदान किया जाय तो समीचीन ही होगा।

रीतिकालीन परम्परा में—

रीतिकालीन-काव्य पर दृष्टिपात करते समय दो बातें ध्यान मे आती हैं— एक तो रीतिकालीन-काव्य की भाषा और दूसरा काव्य की कथावस्तु का मूलाधार। रीति-

---

१ – गुप्त जी – साकेत, मुख पृष्ठ।
२ – वही, पृ० २२६।

कालीन-काव्य की भाषा प्राय: ब्रज थी तथा काव्य-विषय स्त्री बन बैठी थी। शृंगार का अधिक वर्णन मिलने के कारण बहुत से विद्वान् तो उसको रीतिकाल के स्थान पर शृंगार काल से अभिहित करने लगे हैं। सूरदास के कृष्ण तथा गोपिकाओ के सात्विक प्रेम में विगलन आगया था तथा वह प्रेम दर-दर की ठोकरे खाता हुआ कालुष्य-मय हो गया था। रीति-काल समाप्त होते होते आधुनिक काल पर भी अपना प्रभाव छोड गया। रीति-कालीन काव्य की भाषा तथा विषय मे आधुनिक काल के प्रथम चरण तक कोई विशेष परिवर्तन दिखाई नही दिया।

सर्वप्रथम आधुनिक-कवि भारतेन्दु ने आधुनिक-काव्य की नीव डाली। राष्ट्र-प्रेम, निर्धनता के चित्रण आदि को काव्य मे स्थान देकर रीतिकालीन काव्य के विषय का परिवर्तन तो कर दिया किन्तु ब्रज-भाषा काव्य-भाषा न बन सकी, वह गद्य में स्थान पा चुकी थी। हरिऔधजी ने जहा कृष्ण को पुन पूज्य रूप प्रदान किया वहा रीतिकालीन प्रभाव से वे अछूते न रह सके। राधा का विरह वर्णन करते समय सेनापति के 'चम्पक' तथा 'कचनार' उनके मस्तिष्क मे विद्यमान थे। प्रसाद जी ने रीति-कालीन नारी को कामुकता के पार्श्व से निकाल कर अपने काव्य मे स्थान दिया। उनकी श्रद्धा त्यागमयी, क्षमाशीला तथा करुणा का प्रतिरूप बनकर प्रकट हुई। शृंगार का वर्णन किया है किन्तु अश्लीलता की गन्ध का निवारण किया है। फिर भी सूक्ष्म दृष्टि डालने पर उसमे रीति-कालीन शृंगार का लक्षण मिलना स्वाभाविक है।[1] इधर पतजी ने रीति-कालीन स्त्री को प्रकृति के परिवेश में रख कर परखने का प्रयास किया। गुप्तजी ने नारी को अपने काव्य का विषय बनाया किन्तु उसके अलकों मे न उलझ कर उसके उदात्त चरित्र में उलझने का प्रयास किया। जहा उर्मिला के आदर्श-चरित्र को प्रस्तुत किया है वहा उसके विरह-गीत रीतिकाल के प्रभाव से मुक्त भी नही कहे जा सकते, चाहे गीति तत्व तथा भाषा की दृष्टि मे वे भले ही पृथक् हो किन्तु प्रकृति का उद्दीपन रूप मे चित्रण ठीक उसी प्रकार हुआ, जिस प्रकार रीतिकाल में। उर्मिला के पीले पड जाने की समता पतझर से करना ठीक उसी प्रकार मे है, जिस प्रकार नागमती का पति के विरह में भ्रमर जैसा काला बतलाना। यह सत्य है कि कवि ने शृंगार का वर्णन अत्यन्त गम्भीरता से किया है। 'साकेत' के नवम सर्ग के गीतो का माधुर्य किसी भी प्रकार से रीतिकालीन मुक्तको से कम नही है। 'झकार' मे संग्रहीत अनेक कविताओ में छायावाद तो मिलता ही है साथ

१ – प्रसाद, कामायनी, चिन्ता सर्ग, पृ० २०—
अब न कपोलों पर छाया सी
पड़ती मुख की सुरभित भाप,
भुज मूलो मे शिथिल वसन की
व्यस्त न होती है अब माप।

ही साथ रीतिकालीन गध भी आ ही जाती है। रीतिकालीन कवियो की भाति लक्षण-ग्रन्थ तो किसी कवि ने आधुनिक-युग में लिखे नही है, हा कभी कभी शृंगार के वर्णन करते समय परिवर्तित विषय में भी रीतिकाल की चमक लाने की चेष्टा की है और इस प्रकार के कवियो मे गुप्तजी किसी से पीछे नही रह पाए हैं।

नवीनता प्रेमी कवियों में गुप्तजी का स्थान—

गुप्तजी प्राचीनता के साथ साथ नवीनता के प्रेमी हैं। निराला की कविता-कामिनी व्याकरण के बंधनो को तोडकर चली है। उसी प्रकार पन्त ने भी तुक की कोई चिन्ता नही की है। हरिऔध जी ने 'प्रिय-प्रवास' मे संस्कृत के छन्दो के परिवेश मे अतुकान्त कविता का रूप स्थापित किया है। गुप्तजी भी इन नवीन प्रयोगो से विमुक्त न रह सके। यदि ध्यान पूर्वक देखा जाय तो जहा गुप्तजी तुक के शिकजे से बाहर हो गए हैं, वहा उनका कवि स्वरूप चमक उठा है। उदाहरणार्थ 'सिद्धराज' के कतिपय स्थलो पर 'यशोधरा' तथा 'सिद्धराज' के निर्माता का अन्तर स्पष्ट हो जाता है। प्रसादजी की भाति गुप्तजी ने भी काव्य में नवीन भावो, नवीन छन्दो, नवीन प्रतीको को स्थान दिया है यद्यपि प्रसाद से अधिक वे सफल तो नही हुए हैं किन्तु फिर भी इन नवीन प्रवृत्तियो के प्रयोग मे असफल भी नही कहे जा सकते। छायावादी तथा रहस्यवादी कविताएं उनके कविता संग्रहो मे भलीभाति देखी जा सकती हैं, किन्तु इन काव्यो की प्रवृत्तियों मे गुप्तजी की वृत्ति कम रमी है। चरित्र के क्षेत्र मे नवीनता लाने के विचार से गुप्तजी अधिक सफलीभूत हुए हैं। आधुनिक-युगीन विचारधाराओ को वे अपने पौराणिक तथा ऐतिहासिक कथाओं पर आधारित काव्यो मे भली-भाति प्रदर्शित कर पाए हैं। करुणा, सहानुभूति, शृंगार का चित्रण, राज्य-व्यवस्था, अहिंसा, सत्याग्रह, विश्व-बन्धुत्व और मानवतावाद आदि का सफल चित्रण उनकी कृतियो मे प्राप्त हो जाता है इनकी सबसे बडी विशेषता यह है कि वे प्राचीन के प्रति पूज्यभाव की रक्षा करते हुए भी नवीन के प्रति उत्साह प्रदर्शित करने मे समर्थ सिद्ध हुए हैं, ऐसी आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की भी मान्यता है।[1]

राष्ट्रवादी तथा देश भक्त कवियों में—

राष्ट्रीयता के इस प्रगतिशील स्वरूप में उन तत्वो का समावेश होता है जो जन-जीवन के साथ साथ चलते है। राष्ट्रवादी विचारधारा के दो पक्ष किए जा सकते हैं—सास्कृतिक और राजनीतिक।

(क) सास्कृतिक-पक्ष—

इस प्रकार की कविताओ में उन तत्वो का समावेश है जो राष्ट्र के विकासशील सास्कृतिक रूप का संघठन करते हैं। इस पक्ष में राष्ट्र के अतीत का गौरव-गान तथा

---

१ – आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० ६१६–६१७।

वर्तमान के प्रति क्षोभ और आक्रोश की भावना होती है। 'भारत-भारती' वस्तुतः भारतीय गौरव-गरिमा का उदात्त चलचित्र है। आर्य संस्कृति तथा भारतीय सभ्यता के प्रति कवि की भावना अविचल है और अजस्र रूप से इस रचना में प्रवाहित हुई है। 'भारत-भारती' ने अतीत-दर्शन का एक वातावरण प्रस्तुत किया और वर्तमान के प्रति क्षोभ तथा आक्रोश का भाव व्यक्त भी किया है—

हम कौन थे, क्या होगये हैं ?
और क्या होगे अभी ?[1]

क्षोभ तथा आक्रोश के साथ साथ प्रोत्साहन भी भारत-भारती मे निहित है। गुप्तजी कहते हैं—

अन्यायियो का राज्य भी क्या अचल रह सकता कभी,
आखिर! हुए अंग्रेज शासक, राज्य है जिनका अभी।[2]

(ख) राजनीतिक-पक्ष—

राजनीतिक राष्ट्रवादी कविता मे जीवन का स्पन्दन देने वाले तत्वो का निरुपण किया जाना है। इस प्रकार कविता मे राष्ट्रीय-जीवन के स्पन्दन के साथ राष्ट्र-मुक्ति के मार्ग की आशा के प्रति विद्रोह की भावना भी परिलक्षित होती है। इस प्रकार की कविता करने वालो मे सुभद्राकुमारी चौहान, राय देवी प्रसाद-'पूर्ण' का नाम गिनाया जा सकता है। इस प्रकार की कविता के उदाहरण मे निम्न पक्तिया देखी जा सकती हैं —

चिरजीवे सम्राट् होयं जय के अधिकारी !
होवे प्रजा-समूह मधुर सम्पन्न सुखारी। —सुभद्रा कुवरि चौहान[3]

और भी—

सच्ची सहित सुकर्म, देश की भक्ति चाहिए।
पूर्ण भक्ति के लिए, पूर्ण आसक्ति चाहिए। —राय देवी प्रसाद 'पूर्ण'[4]

बाबू जयशकर प्रसाद जी ने भी राष्ट्रीयता के सास्कृतिक पक्ष को अपनाया। उनके नाटक इस ओर अधिक गतिशील दिखाई देते हैं। यद्यपि 'भारतेन्दु के भारत-दुर्दशा' नाटक ने भारतीयो के हृदय मे तहलका मचा दिया था किन्तु केवल एक ही कवि की वाणी एक साथ परिवर्तन प्रस्तुत नही कर सकती। इस राष्ट्रीय भावना का स्रोत

१ – गुप्तजी—भारत-भारती पृ० १५६।
२ – वही भारत-भारती, पृ० १६५।
३ – हिन्दी कविता मे युगान्तर पृ० १६६।
४ – वही, पृ० १६५।

'भारत-भारती' से निकल कर उसके अन्त मे ही विलीन नही होगया अपितु अन्य रचनाओ में भी यह अबाधित गति से बहता हुआ दिखाई देता है। उदाहरण के लिये 'अजित', 'रग मे भग' तथा 'सिद्धराज' जैसो रचनाओं को लिया जा सकता। 'भारत-भारती' ने जो कीर्ति गुप्तजी को दी सम्भवत साकेत भी उतनी कीर्ति देने मे असमर्थ रहा है। सबसे बडी विशेषता यह है कि 'भारत-भारती' का विषय तत्कालीन परिस्थिति से चयन किया गया था। उस समय एक जागरण फैलाने वाली कृति की आवश्यकता थी। अतएव राष्ट्रवादी-विचारधारा वाले कवियो में गुप्तजी का एक प्रमुख स्थान है।

प्रयोगवादी कवियों में—

हिन्दी-काव्य ने आधुनिक-युग में भावो तथा शैलियो के क्षेत्र में काफी करवटें बदली हैं। जिस प्रकार छायावाद, रहस्यवाद को शैली के रूप मे ग्रहण किया गया है, ठीक उसी प्रकार प्रयोगवाद को भी शैलियो मे स्थान प्राप्त हुआ हैं। आधुनिक कवि प्रयोगवादी होता जा रहा हैं। नवीनता के प्रति आकर्षण बढता जा रहा है। तभी तो प्रसादजी की प्रकृति बासे फुलो से शृंगार नही करती है। तार की भाषा का प्रयोग, 'साकेतिकता' सदीप-प्रियता' सुन्दर शैली का समन्वित रूप प्रयोगवाद सज्ञा पाता है। प्रयोगवाद केवल कविता तक नही अपितु गद्य-काव्य को भी अध्यवसित किए हुए है। दो पक्तियो के गीत काव्य लिखे जा रहे हैं। कहानियो का कलेवर लघुतम किया जा रहा है बुद्धि और भावना के सयोग से इस शैली को भी ग्रहण किया जा रहा है। इस क्षेत्र में निराला, पन्त, महादेवी वर्मा, डा० रामकुमार वर्मा, प्रसाद तथा गुप्तजी को लिया जा सकता है। पन्त ने छायावादी शैली अपनाई तो निराला ने साकेतिकता को अपनाया इधर महादेवी वर्मा ने सक्षेप-प्रियता पर बल दिया। प्रसादजी ने प्रबन्ध काव्य मे मुक्तको का प्रयोग करके एक नई शैली को जन्म दिया। गुप्तजी ने 'साकेत' मे गीतो को स्थान दिया किन्तु कामायनी की अपेक्षा गीत साकेत के कलेवर में कम बैठ पाए हैं। जिस प्रकार धर्मवीर भारती की 'कनु प्रिया' तथा डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी की वाणभट्ट की आत्म कथा, मे साहित्यिक प्रयोग बतलाये जाते हैं वैसे ही 'यशोधरा' किसी से पीछे नही रहती। इस रचना के स्वरूप निर्धारण मे वे ही समस्याएं आती हैं जो उपर्युक्त दोनो रचनाओ के स्वरूप निर्धारण में, 'झकार' मे भी गुप्तजी के साहित्यिक प्रयोग के दर्शन किए जा सकते हैं। अनेक प्रयोगो के बावजूद भी वे साकेतिकता तथा तार की भाषा का प्रयोग नही कर पाए हैं।

प्रबन्धकार तथा मुक्तककारों में—

आदिकाल तथा भक्तिकाल मे प्रबन्ध काव्य लेखन की प्रवृत्ति को प्रोत्साहन मिला और प्रचुर मात्रा में प्रबन्ध काव्यो का प्रणयन हुआ। किन्तु रीतिकाल मे प्रबन्ध-

काव्यो का स्थान मुक्तक काव्यो ने लिया। आधुनिक काल मे भी यदि गुप्तजी के समस्त प्रबन्ध काव्यो को निकाल कर देखा जाय तो प्रबन्ध काव्यो की सख्या अधिक नही है। हरिऔधजी ने 'प्रिय-प्रवास' तथा कामायनीकार ने 'कामायनी' एव दिनकर जी ने 'उर्वशी' देकर इस कमी को पूर्ण करने का प्रयास किया। किन्तु हिन्दी खडी बोली का सर्व ग्राह्य रूप इन रचनाओ मे कम ही मिलता है। गुप्तजी ने साहित्य को लगभग २३ प्रबन्ध-काव्य दिये, जिनमे दो महाकाव्य हैं। प्रबन्ध काव्यो की इतनी बडी सख्या न तो प्रसाद तथा हरिऔध जी दे पाए है और न अन्य कोई आधुनिक कवि ही दे पाया है। अतएव प्रबन्धकार के दृष्टिकोण से गुप्तजी की समता का कोई कवि नही है। यह हो सकता है कि प्रसादजी की 'कामायनी' या 'उर्वशी' काव्य के मापदण्डो से नापने पर गुप्तजी के प्रबन्धो से अधिक खरो उतरें किन्तु संख्या के दृष्टिकोण से प्रसाद जी को चुप हो जाना पड जायगा। एक प्रबन्धकार है तो दूसरा प्रमुख रूप से नाटक-कार।

गुप्तजी प्रमुख रूप से प्रबन्धकार हैं तथा गौण रूप से मुक्तक-कार। यो तो उन्होने नाटक, प्रहसन, रूपक और चम्पू आदि का भी सृजन किया है किन्तु वृत्ति प्राय: प्रबन्ध काव्यो मे ही रमी है। मुक्तक काव्य के क्षेत्र मे भी वे इतने पिछडे दिखाई नही देते है। यह सत्य है कि उनके मुक्तक तथा गीतो मे इतनी उत्कृष्टता नही आ पाई है जितनी निराला, पन्त, प्रसाद, महादेवी वर्मा के गीतो तथा मुक्तको मे। किन्तु फिर भी जो कुछ गुप्तजी ने दिया उससे हिन्दी के सहृदय पाठक सन्तुष्ट है।

नारी के समर्थकों में (विशेषतः उपेक्षिताओं के सम्बन्ध से)—

नारी के विषय मे आधुनिक युग में पर्याप्त लिखा गया है। लगभग प्रत्येक आधुनिक कवि ने नारी के विषय मे किसी न किसी रूप मे कलम चलाई है। यह कोई नई बात नही है क्य कि नारी तो हिन्दी के आदिकाल से रीतिकाल तक काव्य का विषय बनती आई है। भक्ति-काल में नारी चित्रण कम हुआ, किन्तु उदात्तता से रीतिकाल मे वह कामुक-व्यक्तियो की कन्दुक मात्र रह गई। आधुनिक काल मे नारी के प्रति सहानुभूति तथा करुणा का भाव जागृत हो उठा। टूटी खटिया तथा लहगे में सिकुड कर सोने वाली तथा इलाहाबाद के मार्ग मे पत्थर तोडती हुई नारियो के प्रति कवियो की दृष्टि गई। पन्तजी ने नारी को सौन्दर्य के तराजू में रख कर तोला, पन्तजी के काव्य पर स्त्रैणता का आरोप लगाया जाता है किन्तु कवि इनकी चिन्ता नही करता है। प्रसादजी ने नारी के गौरवमय रूप को अपनाया। उन्होंने नारी को श्रद्धा के रूप मे देखा तथा मानव जीवन के सुन्दरतल मे पीयूष-स्रोत सी बहने वाली बनने की कामना प्रकट की। बच्चन ने तो नारी को जगत की धात्री मान लिया। उनका तो ऐसा विचार है कि यदि नारी न हो तो मनुष्य इस

संसार रूपी घट को भग्न करके चला जाता । जगत-घट के ऊपर लिप्त नारी के रूप के रस का आस्वादन करने के लिए वह प्रतीक्षा करता रहता है ।[1]

गुप्तजी एव हरिऔधजी ने प्राय उपेक्षिताओ को अपने काव्य मे स्थान दिया । 'प्रिय-प्रवास' मे चित्रित राधा को यदि रीतिकाल ने नही भुलाया तो उसके प्रेमी कृष्ण ने तो भुला दिया था अत वह हरिऔधजी की सहानुभूति की पात्री बन सकी । इधर गुप्तजी ने 'यशोधरा' रचना मे नारी-जीवन की व्याख्या की—

अबला जीवन हाय ! तुम्हारी करुण कहानी,
आचल मे है दूध और आखो मे पानी ।[2]

यशोधरा जिसको बौद्ध-साहित्य ने भुला दिया, 'यशोधरा' काव्य मे पति के लिये रोती है तो राहुल के लिए हसती है । एक ओर प्रोषित पति का है तो तो दूसरी ओर आदर्श मा है । वह राहुल को दूध से पालती है तो प्रीतम की प्रेमबल्लरी का अश्रुओ के जल से सीचती है ।

कवीन्द्र रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने 'काव्य की उपेक्षिताए' लेख मे बाल्मीकि और भवभूति की उर्मिला के प्रति, कालीदास की प्रियम्वदा और अनुसूया के प्रति, बाण की पत्र-लेखा के प्रति, की गई निर्मम-उपेक्षा पर दुख प्रकट किया था । उसी प्रेरणा से श्री भुजग भूषण भट्टाचार्य ने भी 'सरस्वती' पत्रिका में कवियो की उर्मिला विषयक उदासीनता की ओर इ गित किया था । गुप्तजी इन दोनो ही व्यक्तियो से अधिक प्रभावित हुए तथा 'उर्मिला' को उजागर बनाया, जिससे यशोधरा, सैरन्ध्री, विष्णुप्रिया को भी उजागर करने की प्रेरणा मिली । आधुनिक युग के कवियो मे गुप्तजी का उपेक्षिताओ के साथ सहानुभूति प्रदर्शित करने मे सर्व प्रथम स्थान कहा जा सकता है, इसमें कोई सन्देह नही है ।

निष्कर्ष—

खडी बोली के प्रबन्ध काव्यो मे प्रयोगार्थ बनाने में गुप्तजी का सर्व प्रथम स्थान है । काव्य में विशद सस्कृति के चित्रण में गुप्तजी सर्वोत्कृष्ट हैं । यद्यपि प्रसादजी ने भी

---

१ – बच्चन की नारी—
जगत घट को विष से कर पूर्ण, किया जिन हाथो ने तैयार ।
लगाया उसके मुख पर नारि, तुम्हारे अधरो का मधुसार ।
नही तो कब का देता फोड, मनुज विषयो को ठोकर मार ।
इसी मधु का लेने को स्वाद, हलाहल पी जाता ससार ।

२ – गुप्तजी—यशोधरा, पृ० ४७ ।

महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त किया है किन्तु इतना व्यापकत्व नहीं जितना गुप्तजी के संस्कृति-चित्रण मे है। आदर्शवाद के दृष्टिकोण मे वे हरिऔध तथा प्रसादजी की कोटि मे रखे जा सकते हैं। गान्धीवादी कवियो में गुप्तजी का सर्वोपरि स्थान है। रामभक्त-कवियो में उनकी तुलना मे किसी भी आधुनिक कवि को नही रखा जा सकता है। रीतिकालीन परम्परा मे गुप्तजी का स्थान, भारतेन्दु, पन्त और प्रसाद के पीछे रखा जा सकता है। नवीनता प्रेमी कवियो मे उनका महत्वपूर्ण स्थान है राष्ट्रवादी या देश भक्त कवियो में उनका स्थान प्रथम है। प्रयागवादी कवियो मे गुप्तजी को पन्त, प्रसाद, निराला के पीछे बिठाया जा सकता है। प्रबन्धकार कवि की दृष्टि से उनकी तुलना में कोई आधुनिक-कवि नही टिक पाता है। मुक्तक-कार कवियो मे गुप्तजी का चतुर्थ स्थान माना जा सकता है। उपेक्षिताओं के सम्बन्ध मे काव्य रचना करने वालो में वे बेजोड हैं।

जो भी हो, गुप्तजी को राष्ट्र कवि के साथ साथ प्रतिनिधि कवि होने का सौभाग्य भी प्राप्त है जिसके कारण उनके स्थान को भलीभांति आधुनिक कवियो मे उच्च कहा जा सकता है। उनकी रचनाएं जैसी हैं वैसी हैं किन्तु वे हिन्दी-साहित्य की अनुपम निधि हैं, इसमे दो मत नही है। चाहे उनमें भले ही चटक-मटक न हो किन्तु जीवन के शाश्वत-तत्वो मे रिक्त नही कहा जा सकता। यही कारण है कि गुप्तजी का काव्य सबसे अधिक पढा जाता है। इस विषय में पं० गिरिजा दत्त शुक्ल 'गिरीश' की गुप्तजी के विषय में कही गई ये पंक्तियां प्रेक्षणीय हैं—

"प्राचीन विचार के साहित्य-सेवी उनकी रचनाओं मे मंगलाचरण आदि के समावेश के रूप मे अपनी प्रियवस्तु पा जाते हैं। द्विवेदी-स्कूल के कवि उन्हे अपने नेता के रूप मे ग्रहण करते है। छायावादी कवि भी उनमे अपने अनुकूल कुछ विशेषताए और प्रवृत्तिया ढूंढ लेते हैं। इस प्रकार वर्तमान समय के सभी दलो को अल्पाधिक मात्रा मे, उनसे सन्तोष प्राप्त हो जाता है। पाठको की जितनी बडी संख्या उन्हे प्राप्त है उतनी बडी संख्या प्राप्त करने का सौभाग्य अन्य किसी भी जीवित हिन्दी-कवि का उपलब्ध नही है।"[1]

---

१ — पं० गिरजादत्त शुक्ल 'गिरीश', गुप्तजी की काव्य धारा, पृ० २६० ।

द्वितीय अध्याय

गुप्त जी के प्रबन्ध काव्य

गुप्तजी की काव्य-रचनाओ की संख्या लगभग ४० है, जिनमें प्रबन्ध-काव्य, मुक्तक काव्य, पद्य-सग्रह, रूपक, नाटक, चम्पू, अनूदित आदि अनेक प्रकार की रचनाएं सम्मिलित हैं। 'पद्य-प्रबन्ध', 'भारत-भारती', 'आजलि और अर्घ्य', 'हिन्दू', 'वैतालिक', 'मगलघट', 'स्वदेश गीत', 'झकार', 'प्रदक्षिणा', 'कुणाल-गीत' और 'विश्व वेदना' रचनाएं मुक्तक-काव्य तथा पद्य संग्रहो की श्रेणी मे आती हैं। रूपक तथा नाटको मे 'तिलोत्तमा', 'चन्द्रहास', 'त्रिपथगा', 'पृथ्वी-पुत्र' और 'अनघ' आदि का नाम गिनाया जा सकता है। 'मेघनाद-वध', 'पत्रावली' एव ऊमर खैयाम की रुबाइयो के हिन्दी-अनुवाद सग्रह अनूदित रचनाए हैं। 'साकेत', 'जयभारत', 'जयद्रथ-वध', 'सैरन्ध्री', 'वन-वैभव', 'वक सहार', 'पचवटी', शक्ति', 'हिडिम्बा', 'शकुन्तला', 'युद्ध', 'नहुष', विकटभट', 'यशोधरा', 'रंग मे भग', 'सिद्धराज', 'गुरुकुल', 'गुरु तेग बहादुर', 'अर्जन और विसर्जन', 'काबा और कर्बला', 'विष्णुप्रिया', 'अजित', और किसान' आदि रचनाएं प्रबन्ध काव्य की कोटि में आती हैं। 'द्वापर' को कतिपय विद्वान प्रबन्ध-काव्य मानते हैं किन्तु डा० कमला कान्त पाठक को उसका प्रबन्धत्व स्वीकार नही है। मूलत यह कृति प्रबन्ध-काव्य की कोटि मे नही आती है। गुप्तजी द्वारा प्रतिपादित एक 'उर्मिला' प्रबन्ध काव्य भी मिलने का सकेत मिला है किन्तु वह काव्य अधूरा है। उनकी एक प्रबन्धात्मक रचना 'नल-दमयन्ती' कही खो गई है अत उपर्युक्त दोनो रचनाओं से सम्बन्धित विवेचना प्रस्तुत नही की जा सकती क्योकि काव्य की परख के लिए काव्य का होना तथा पूर्ण होना आवश्यक है। 'यशोधरा' काव्य को यद्यपि चम्पू की कोटि में माना गया है, किन्तु फिर भी उसके कथानक के दृष्टिकोण से प्रबन्ध की कोटि मे रखा जा सकता है।

यह उपर बतलाया जा चुका है कि गुप्तजी अधिकाशत' प्रबन्ध कवि हैं। इनके प्रबन्धो मे सम्बन्ध निर्वाह, मार्मिक स्थलो की पहिचान एव दृश्यो की स्थान-गत विशेषता का पूर्ण निर्वाह कही कही नही हो पाया है। फिर भी एक कोमल माप-दण्ड से उन्हे प्रबन्ध की मान्यता दी जा सकती है। गुप्तजी के प्रबन्धो में महाकाव्य और खण्डकाव्य दोनो प्रबन्ध भेद मिलते हैं।

—— महा काव्य ——

जिस काव्य मे सर्गबद्ध कथा हो, वस्तु वर्णन हो, भाव-व्यजना एवं रसो का समावेश हो, सम्वादो का सुन्दर निर्वाह हो उसे महाकाव्य की कोटि में गिना जा सकता

है । सानुबन्ध कथा से तात्पर्य कथावस्तु तथा सम्बन्ध योजना से है । काव्य सर्गों में वर्गीकृत होना चाहिए जिनकी सख्या ८ या उससे अधिक होनी चाहिए । प्रत्येक सर्ग मे चरित-नायक की कथा चलनी चाहिए । सर्ग के अन्त में छन्द परिवर्तन महाकाव्य का आवश्यक गुण है । वस्तु वर्णन विभाव की दृष्टि से रस निष्पति मे सहायक होता है । समय ऋतु पदार्थ, प्रकृति का सुन्दर विवेचन महाकाव्य के लिये आवश्यक माना जाता है । संवाद काव्य की रोचकता में अभिवृद्धि करते हैं । काव्य का नामकरण नायक (प्रमुख पात्र) घटना या घटनास्थल के नाम पर होना समीचीन समझा जाता रहा है ।[1]

१. साकेत—

प्रस्तुत काव्य का रचना-काल सं० १९८८ है । गुप्तकाव्य मे ही नही अपितु हिन्दी के अन्य महाकाव्यो में भी 'साकेत' का नाम प्रमुख रूप से लिया जा सकता है । 'साकेतकार' राम कथा को लेकर चला है तथा उसमे नवीनता लाने का उपक्रम किया है इसमे सन्देह नही कि उसको सफलता भी प्राप्त हुई है किन्तु कही कही पर इस नवीनता ने महाकाव्य तो क्या प्रबन्धत्व का भी बाधित करने का प्रयास किया है । काव्य की समस्त घटनाएं या तो 'साकेत' (अयोध्या नगरी) मे होती है अथवा उसके चारो ओर घूमती-सी दिखाई देती हैं । अतएव कवि ने अयोध्या नगरी को हो 'साकेत' नाम देकर उसके आधार पर ही काव्य का नामकरण किया है । 'साकेत' से पूर्व गुप्तजी ने 'उर्मिला' नामक काव्य लिखना प्रारम्भ किया किन्तु वह पूर्ण न हो सका और उसी काव्य की नायिका उर्मिला साकेत में अवतरित होकर कवि को सहानुभूति की अधिकारिणी हो गई है । इसका प्रमाण यह है कि अपूर्ण 'उर्मिला' काव्य की कुछ पंक्तिया साकेत के प्रथम सर्ग मे देखी जाती हैं—

पद्मस्थ पदेमव शुभासनास्था, अपूर्व सी है जिसकी अवस्था ।
प्रत्यक्ष देवी सम दीप्ति माला, प्रासाद मे है यह कौन बाला ।

उपर्युक्त पंक्तियाँ 'साकेत' मे कुछ परिवर्तन लेकर इस प्रकार देखी जाती हैं.—

अरुण-पट पहने हुए, आह्लाद मे,
कौन यह बाला खडी प्रासाद मे ?[2]

भवभूति के हृदय की सीता, कालिदास के हृदय की शकुन्तला, हरिऔधजी की राधा ने ही मानो गुप्तजी के हृदय मे उर्मिला के रूप मे स्थान पाया प्रतीत होता है । अतः कवि उर्मिला के चरित्र के गौरव की प्रतिष्ठा करना चाहता है किन्तु राम के आदर्श के प्रति

---

१ – आचार्य दण्डी, काव्यादर्श, प्रथम परिच्छेद', १४–१९ ।

२ – गुप्तजी, साकेत, प्रथम सर्ग, पृ० १९ ।

मोह का विसर्जन भी नही कर पाता है। यही कारण है कि कुछ विद्वान् साकेत का नायक राम का मानते हैं। कुछ नायिका-प्रधान काव्य मानकर उर्मिला को प्रमुख स्थान प्रदान करते हैं। रवीन्द्रनाथ टैगोर तथा आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के वचन ही 'साकेतकार' के लिए साकेत की प्रेरणा बन कर आए और इस दृष्टि से उर्मिला को साकेत की नायिका माना जा सकता है। राम के चित्रकूट आगमन तक की कथा तो रामयण की जैसी है किन्तु कथा के उत्तरार्द्ध को वशिष्ट की याग-माया द्वारा प्रदर्शित कराया है। काव्य के पढने पर ऐसा ज्ञात होता है कि रावण-वध कराना कवि का ध्येय नही है, उसका ध्येय लक्ष्मण उर्मिला-का संयोग कराना है।

कवि ने प्रबन्धत्व के निर्वाह के साथ साथ नवम सर्ग में प्रगीति शैली को प्रश्रय दिया है जा कवि की नवीनता वादी दृष्टिकोण की सूचना देती है। प्रबन्धात्मकता नवीन छन्द याजना मे बाधा प्रस्तुत करती है। किन्तु बिना छन्द योजना के उर्मिला के हृदय को व्यथा का अभिव्यक्तिकरण भी तो एक समस्या बन जाता है।

काव्य १२ सर्गो में विभाजित है। महाकाव्य के कम से कम आठ सर्ग होना आवश्यक है, अत. इस दृष्टि से साकेत महाकाव्य की कोटि आ जाता है। महाकाव्य की अन्य विशेषताएं भी किसी न किसी रूप मे प्राप्त हो ही जाती हैं।

२. जय भारत—

यह गुप्तजी का द्वितीय महाकाव्य है जिसका प्रणयन साकेत के पश्चात् सं० २००९ में हुआ। प्रस्तुत काव्य गुप्तजी के समस्त प्रबन्वो में बडा है। महाभारत की कथा पर आधारित यह काव्य पाण्डवो के समग्र-जीवन की झाकी प्रदान करता है। समस्त-काव्य ४९ सर्गों में विभक्त है। कही कही पर कथा के विश्रृंखल होने के कारण कतिपय विद्वान् इसे महाकाव्य नही मानते हैं। कथा के सूत्रधार कृष्ण हैं किन्तु कवि का दृष्टि-कोण युधिष्ठर के आदर्श चरित्र को प्रस्तुत करता है। द्रौपदी, अर्जुन, भीम, नकुल, सहदेव आदि सभी मध्य मार्ग में प्राण विसजन करते हैं किन्तु कथा का अवसान युधिष्ठर के इन्द्रलोक मे पहुँचने पर होता है। इसके अतिरिक्त काव्य के मध्य में भी युधिष्ठर का अधिक महत्व दिखाई देता है अत· गुप्तजी ने युधिष्ठर को हो अपने काव्य का नायक माना है। जो सैद्धान्तिक दृष्टि से महाकाव्य का नायक हो सकता है। डा० नगेन्द्र ने जय भारत को राष्ट्र कवि के सम्पूर्ण रचनाकाल का प्रतिनिधि काव्य माना है। कवि ने उसे अपनी लेखनी का क्रमिक विकास माना है। 'जयभारत' प्रबन्ध काव्यो का संकलन प्रतीत होता है क्योकि 'हिडिम्बा', 'सैरन्ध्री', 'वन वैभव', 'बक संहार', 'नहुष', 'युद्ध', 'जयद्रथवध', स्वतन्त्र प्रबन्ध काव्यो के रूप में 'जयभारत' के प्रकाशन के पूर्व से ही हिन्दी-साहित्य ससार में आ चुके थे। 'जय भारत' के उपर्युक्त काव्यों के नाम वाले सर्गों में

इनकी ही कथा को सूक्ष्म करके प्रस्तुत कर दिया गया है। उदाहरण के लिए 'नहुष' काव्य की इन पंक्तियों को लिया जा सकता है:—

सह्य किन्तु राज की अनीति भी तो एक बार,
अच्छी बात भुगतेंगे हम यह विष्टि-भार।[1]

उपर्युक्त पंक्तियां 'जयभारत' में 'नहुष' नामक सर्ग के अन्तर्गत इस प्रकार देखी जाती हैं.—

'सह्य निज राजा की अनीति भी है एक बार।
अच्छी बात भुगतेंगे हम यह विष्ट-भार॥[1]

मैं अबला हूँ किन्तु अत्याचार सहूँगी,
तुझ दानव के लिए चण्डिका बनी रहूँगी।[2]

उपर्युक्त पंक्तियां 'जयभारत' के 'सैरन्ध्री' सर्ग के अन्तर्गत पृष्ठ २५६ पर मिलती है किन्तु 'सैरन्ध्री' काव्य के पृ० २३ पर बिना किसी परिवर्तन के ज्यों की त्यों मिल जाती हैं। अत 'जयभारत' काव्य गुप्तजी के तत्कथा सम्बन्धी अनेक खण्डकाव्यों का संग्रह प्रतीत होता है। जो हो, किन्तु आधुनिक युग में उसे महाकाव्य होने का गौरव प्राप्त है।

— खंड काव्य —

खण्ड काव्य ''भवेत्काव्यंस्येकदेशानुसारिच'' अर्थात् खण्ड काव्य जीवन के किसी विशेष अंश अथवा घटना को लेकर लिखा जाता है। नायक के जीवन के समस्त अंशों का पर्यवेक्षण उसमे नही हो पाता है, क्योंकि इसका कलेवर भी महाकाव्य की अपेक्षा छोटा होता है। सर्गों की संख्या का भी कोई बन्धन नही है। अत. उपर्युक्त दो लक्षणों के अतिरिक्त खण्ड-काव्य के वे ही लक्षण हैं जो महाकाव्य के हैं। इनके आधार पर हमे गुप्तजी के प्रबन्ध काव्यों के रूप खण्ड काव्यों का परीक्षण करना है।

१. रंग में भंग

इस खण्ड काव्य को रचना काल की दृष्टि से गुप्तजी की सर्व प्रथम रचना होने का सौभाग्य प्राप्त है। इसका रचनाकाल सं० १९६६ है। यह घटना-प्रधान काव्य ऐतिहासिक कलेवर मे प्रस्तुत किया गया है। बूंदी और चित्तौड़-नरेशों की घटना को

---

१ – गुप्तजी—नहुष, पृ० ३५।
२ – गुप्तजी—जय भारत, पृ० १२।
३ – जय भारत, सैरन्ध्री सर्ग, पृ० २५६।

काव्य का विषय बनाया गया है । बूदी-नरेश वीरसिह तथा उसका अनुज लाल सिंह अपनी पुत्री का पाणि-ग्रहण सस्कार चित्तौड के नरेश खेतलसिह के साथ करने का निश्चय करते हैं । विवाह सम्पन्न होने के उपरान्त वरपक्षीय राजकवि अपने राजा की अतिशयोक्तिपूर्ण प्रशस्ति करता है जो लालसिह को सुन्दरता तथा स्वाभाविकता से विहीन लगती है । वह राजकवि से यह कह ही देता है—

कह सकते न यो किसी मे एक ईश्वर के बिना,
अद्वितीय मनुष्य जगत मे कौन जा सकता गिना ।
एक से है एक उत्तम, पुष्प इस ससार का,
पार मिलता है किसे प्रभु-सृष्टि-पारावार का ।[1]

राजकवि अपने कृत्य पर ग्लानि अनुभव करते हुए आत्म-हत्या कर लेता है । फिर तो विवाह के समय की शहनाइया, युद्ध-भेरियो में परिवर्तित हो जाती हैं । घमासान युद्ध होता है तथा वर, अपनी बरात के सदस्यो के साथ वीरगति को प्राप्त करता है । वह क्षत्रिय-कुमारी जिसने अपने पति-के दर्शन तक नही किए थे, मृत्यु की शरण लेती है । इस इस प्रकार शादी के रग मे भग हो जाने के कारण काव्य के पूर्वार्द्ध मे हुई घटना के नाम पर ही काव्य का नामकरण कर दिया गया है । इतनी घटना के उपरान्त काव्य का उत्तरार्द्ध प्रारम्भ होता है इसमें चित्तौड नरेश लाखा अपने पूर्वजो के वैर-प्रतिशोध की कामना से बूदी के दुर्ग को तोडने की प्रतिज्ञा करता है । उसकी हठ को देखकर, बूदी का कृत्रिम दुर्ग बनवाया गया । कुम्भ नामक एक वीर बूदो का निवासी था, किन्तु लाखा के यहा रहने लगा था, इसको सहन नही कर पाता है । वह अपनी जन्म भूमि के स्वाभिमान के लिए अपने प्राणा की आहुति दे देता है । काव्य में वीर रस प्रधान है, भाषा का प्रयोग विषयानुकूल हुआ है । यद्यपि भाषा 'साकेत' की भाषा जैसी नही है ।

२. जयद्रथ-वध—

रचनाकाल की दृष्टि से यह गुप्तजी का द्वितीय खण्डकाव्य है । इसका प्रणयन 'रग मे भग' रचना के १ वर्ष पश्चात् सं० १९६७ मे हुआ था । अपने इकलौते पुत्र अभिमन्यु को जयद्रथ के द्वारा स्वर्ग का पथिक बनाया सुनकर पुत्र की अशान्त आत्मा को प्रतिशोध-सलिल से शीतल करने के लिए अर्जुन ने दिवस अवसान तक जयद्रथ-वध की प्रतिज्ञा की । बस इसी घटना के आधार पर काव्य को नाम दे दिया गया है । वीर तथा करुण रस से युक्त इस काव्य का नायक अर्जुन है, यद्यपि उसकी प्रतिज्ञा के पूर्ण कराने में कृष्ण का अधिक योगदान है, किन्तु उसका निमित्त तो अर्जुन ही है । काव्य मे यद्यपि शुद्ध खड़ी

---

१ – गुप्तजी – रंग मे भंग, पृ० १२ ।

बोली का प्रयोग है किन्तु फिर भी पण्डिताऊपन की झनक भी साथ नही छोड़ने पाई है। यह गुप्तजी का प्रथम खण्डकाव्य है जो हिन्दी जगत मे सबसे अधिक लोक प्रिय रहा है। इस दृष्टि से प्रारम्भिक काल की गुप्तजी की रचनाओ में इस रचना को सर्वश्रेष्ठ कहा जा सकता है।

३. शकुन्तला—

इस तृतीय खण्ड-काव्य का रचना काल सं० १९७१ है। कालिदास के 'अभिज्ञान शाकुन्तलम्' की कथा को ग्रहण करके काव्य की सृष्टि की गई है। तत्कालीन समाज का सुन्दर चित्र प्रस्तुत किया गया है। न केवल पात्र तथा कथावस्तु को कालिदास से ग्रहण किया है अपितु विचार तथा भाव भी ग्रहण किए है। यद्यपि यह रचना स्वतन्त्र है किन्तु कही कही तो उपर्युक्त सस्कृत नाटक के वाक्यो को ,हिन्दी में पद्यात्मक रूप दे दिया गया है। प्रस्तुत रचना मे गुप्तजी की मौलिकता के दर्शन नही हो पाते हैं। राजा लक्ष्मण सिंह द्वारा प्रस्तुत किया गया 'अभिज्ञान-शाकुन्तलम्' का सुन्दर अनुवाद हिन्दी पाठको को प्राप्त हो चुका था किन्तु उसकी भाषा ब्रज तथा अवधी थी। गुप्तजी ने इसी को खडी बोली में लिख कर खडी बोली के विकास मे योग देते हुए एक प्रबन्ध-काव्य की संख्या की अभिवृद्धि की। छन्द प्रबन्ध की दृष्टि से राजा लक्ष्मण सिंह की अनुदित 'शकुन्तला' नामक कृति कही अधिक श्रेष्ठ हैं। रस परिपाक की दृष्टि से दोनो रचनाएं समान कोटि की कही जा सकती हैं।[1]

४. किसान—

प्रस्तुत रचना विषय की दृष्टि से अजित की कोटि मे आती है किन्तु रचनाकाल के दृष्टिकोण से इसे शकुन्तला के पीछे रखा जा सकता है क्योकि इसका रचनाकाल स० १९७४ है। कल्लू काल्पनिक पात्र को लेकर किसान का चित्रण प्रस्तुत किया गया है। किसान जब महाजन तथा जमीदारो की चक्की से पिस रहा था, अन्न उत्पन्न करके स्वयं भूखो मरता था, गुप्तजी ने उसी किसान की दारुण बिडम्बना पर भी अश्रु बहाकर, दीन कृषको के हृदय को टटोला। यदि 'गोदान' सृष्टा होरी को लेकर चला तो 'किसान' का प्रणेता 'कल्लू' को। *आत्मकथात्मक* शैली इस काव्य की सुन्दरता को और अधिक बढ़ा देती है। कल्लू अपने जीवन से व्यथित होकर देशत्याग कर देता है, कुली का जीवन यापन करता है किन्तु अभागे को किसान के अभिशप्त कुल में उत्पन्न होने के कारण सुख कहा?

---

१ – तुलनात्मक अध्ययन हेतु देखें— कवि नेवाज कृत सकुन्तला नाटक, सम्पादक — साहित्य शिरोमणि राजेन्द्र शर्मा।

यद्यपि वह ईश्वर का परमोपासक है किन्तु ईश्वर भी काले कल्लू के लिए बधिर हो गया है। समस्त काव्य मे करुण रस का सचार है। यद्यपि कल्लू एक साधारण किसान है जो विधि की विडम्बना से व्यथित है किन्तु फिर भी वह विशाल हृदय वाला है। समस्त देश को अपने परिवार के रूप में देखता है। कल्लू की पत्नी को चाहे भले ही अपने देश में रह कर जल के स्थान पर अश्रु पान करना पड़ा हो किन्तु संसार का परित्याग करते समय अपनी शव के पुष्प भारत पहुँचाने की कामना प्रकट करती है। इस दम्पति मे देश-प्रेम की भावना कूट-कूट कर भरी है। इनको किसी ने पाठशाला में शिक्षा नही दी थी किन्तु फिर भी इतनी देशभक्ति के पीछे किसी देशभक्त प्रणेता की भावानुभूति छिपी। कल्लू की स्त्री कहती है:—

> लो बस, अब मैं चली, सदा को, मन मे मत घबराना।
> मेरे फूल, जा सको तो तुम, भारत को ले आना॥[1]

इस कृति मे कवि गान्धीवादी विचार-धाराओ से अधिक अभिभूत सा दिखाई देता है। महात्मा गाधी के द्वितीय असहयोग आन्दोलन के समय अफ्रीका मे निवास करने वाले भारतीय किसान इसी दारुण भट्टी मे सुलग रहे थे। क्या पता, किसी कृषक ने उसी समय कल्लू तथा कुलवन्ती के रूप मे उछलकर गुप्तजी की लेखनी को पकड़ लिया हो और अपने आसू पोछने को बाध्य किया हो।

भाषा भारत-भारती की जैसी है। जन-जागरण की दृष्टि से यह एक अनूठी रचना है। इसी दृष्टिकोण से इसे प्रगतिवाद के समय मे पर्याप्त स्थान मिला। यह एक उत्कृष्ट खण्ड काव्य है, इसमे सन्देह को स्थान नही है।

५. पंचवटी—

यह पौराणिक काव्य गुप्तजी का पचम खण्ड-काव्य है क्योंकि इसका रचना-समय स० १९८३ है। इस खण्ड काव्य के अब तक ३१ सस्करण निकल चुके हैं जो इसकी लोक-प्रियता की दुन्दुभी बजाते हैं। राम कथा को लेकर इस काव्य की सृष्टि हुई है। काव्य का घटना-चक्र 'पंचवटी' मे ही घटित होता है अत. 'साकेत' की भाति इस काव्य को पंचवटी नाम दे दिया गया। शूर्पणखा, लक्ष्मण, राम और सीता आदि रामायण के पात्रो को ग्रहण किया गया है। 'पंचवटी' मे लक्ष्मण का चरित्र अधिक मार्मिक हो गया है। रचना में ऐसे प्रसगो की उद्भावना की गई है जिससे लक्ष्मण को प्राधान्य प्राप्त हो। प्रमुख विषय शूर्पणखा का तिरस्कार तथा उसकी नासिकाच्छेदन है। कुप्रवृतियो

---

१ - गुप्तजी—किसान, पृ० ४१।

मे युक्त नारी दण्डनीया होती है, यह लक्ष्मण के माध्यम से कवि का सन्देश है। कुछ लोगो का कहना है कि प्रेम स्त्री का जन्म सिद्ध अधिकार है और यदि शूर्पणखा ने लक्ष्मण से प्रेम की भीख मागी तो क्या बुरा किया, जिसके कारण उसे कुरूपिता किया गया। किन्तु स्त्री को वासना की अग्नि मे जलकर यह नही भूलना चाहिए कि प्रत्येक पुरुष भी तो प्रेम पात्र नही होता है। उसमे हिडिम्बा की जैसी एक निष्ठता का अभाव है। निषेधात्मक उत्तर पाने पर वह लक्ष्मण को अपना विकराल रूप दिखाती है मानो वह यती उससे भयभीत हो जायगा। ऐसी परिस्थिति मे लक्ष्मण की प्रतिक्रिया स्वाभाविक है। वह ईंट का जवाब पत्थर से देता हुआ कहता है —

> किन्तु न फिर छल सके किसी को,
> मारूं तो क्या, नारी जान,
> विकलांगी मै तुझे करूंगा,
> जिससे छिप न सके पहिचान।[1]

यहा गुप्तजी ने इतनी सबला शूर्पणखा के लिए 'अबला' शब्द प्रयुक्त कराया है; जिसके प्रति कवि का मोह प्रतीत होता है। काव्य वीर रस प्रधान है। भाषा अत्यन्त सुन्दर है।

६. शक्ति –

इस खण्ड काव्य का रचनाकाल स० १९८४ है। पौराणिक विषय तथा पात्रो को लेकर रचा गया यह गुप्तजी का छठा खण्ड काव्य है। इसमे शक्ति के शौर्य का वर्णन है। देव-दानवो के युद्ध में महिषासुर को काल का ग्रास बनाती हुई रण-चंचला महा-शक्ति ने देवो का उद्धार किया। वीर-रस का सर्वत्र सचार हुआ है। उदाहरणार्थ ये पंक्तिया ली जा सकती है —

> गरजी अट्टहास कर अम्बा, देख हड्ड के हड्ड,
> दहल उठे जल थल, अम्बर तल, घटा विकट संघट्ट।[2]

उपर्युक्त पंक्तिया गौडी रीति के अन्तर्गत आती हैं। वीर रसानुकूल भाषा का प्रयोग हुआ है। वीप्सा अलंकार प्रायः सारी रचना में मिलता हैं क्योकि युद्ध मे तो उसका महत्व और अधिक बढ जाता है। वीर रस भयानक रस में उस समय परिवर्तित हो जाता है जिस समय देवी, महिषासुर का वध करती है। वीरता प्रधान गुप्तजी की रचनाओ में 'शक्ति' एक महत्वपूर्ण स्थान रखती है।

---

१ – गुप्तजी—पचवटी पृ० ६३।
२ – गुप्तजी—शक्ति, पृ० १२।

७. सैरन्ध्री—

सं १९८४ में प्रस्तुत खण्ड काव्य गुप्तजी का सप्तम खण्ड काव्य कहा जा सकता है। महाभारत की कथा को लेकर चलने वाले इस काव्य मे द्रोपदी (सैरन्ध्री) तथा कीचक के प्रसग को महत्व प्रदान किया गया है। कीचक के आजाने से सैरन्ध्री के चरित्र में चार-चाद लग जाते हैं। उसका भारतीय आदर्श नारी का स्वरूप प्रकाश मे आ जाता है, यही कवि का अभिप्रेत है। पाण्डव अपनी मा कुन्ती तथा द्रोपदी सहित राजा वैराट के यहां अपने अज्ञातवास की अवधि को पूर्ण कर रहे हैं। कीचक वैराट का मन्त्री है। वह द्रोपदी को अपनी कुदृष्टि का केन्द्र बनाता है किन्तु सैरन्ध्री उसके लिए अबला से सबला बन जाती है और उसके एक धक्के के साथ वह नर-पिशाच मुंह के बल गिर जाता है। इस काव्य में गुप्तजी ने सैरन्ध्री में शील, रूप के साथ साथ शक्ति का भी समावेश किया है। सैरन्ध्री निस्सन्देह रूप से काव्य की नायिका है। उसके चरित्र का प्रतिष्ठापना ही प्रमुख कार्य है इसीलिए सैरन्ध्री के नाम पर इस कृति का नाम रखा गया है। काव्य वीर-रस प्रधान है। नारी की कठोर तथा कामल दोनो वृत्तियो का सम्यक् चित्रण हुआ है। कीचक के बलात्कार करने पर जो सैरन्ध्री व्याघ्री के समान है, वही भीम द्वारा बधित कीचक को देखकर करुणा की मूर्ति सी प्रतीत होती है। भाषा लगभग जयद्रथ-बध की जैसी है।

८. वक संहार—

गुप्तजी के इस अष्टम खण्डकाव्य का प्रणयन सं० १९८४ मे हुआ है। 'सैरन्ध्री' की भाति इस काव्य की कथा भी महाभारत से संग्रहीत है। भीम-द्वारा बकासुर का वध किया जाता है अतः काव्य घटना-प्रधान है। पाण्डव अपने निर्वासन की अवधि-यापन करते हुए ब्राह्मण के यहा निवास करते हैं। वहा बकासुर को भोजन लेकर बारी बारी से प्रत्येक घर से एक व्यक्ति को जाना पडता है। वह दुष्ट न केवल भोजन को, अपितु ले जाने वाले को भी खा जाता है। ब्राह्मण के परिवार मे से सदस्य की बारी आने पर समस्त परिवार में शोक छा जाता है। ब्राह्मण की कन्या अपने इकलौते भाई की रक्षा के दृष्टिकाण से स्वयं जाने का आग्रह करती है। ब्राह्मणी को अपने पति, पुत्र और पुत्री प्रिय हैं अत वह स्वय अपने प्राणोको उस बकासुर को दे देना चाहती है। इधर ब्राह्मण स्वय जाना चाहता है किन्तु इस समाचार को सुनकर कुन्ती उन्हें धैर्य देती है तथा भीम को बकासुर का आहार लेकर भेजती है। भीम बकासुर का वध कर डालता है। प्रस्तुत रचना में भीम का शौर्य तो दिखाई देता ही है किन्तु इसके साथ साथ कुन्ती का त्याग तथा करुणामय रूप मुखरित हो उठा है। पात्रो में कोई परिवर्तन नही है, सारे पात्र महाभारत प्रथित हैं। कवि ने अपने ढग से काव्य रचना करके कुन्ती के चरित्र की उदात्तता का उन्मेष किया है। काव्य के पूर्वार्द्ध में करुण रस मिलता है किन्तु उत्तरार्द्ध मे वीर रस आ जाता है।

भाषा विषयानुकूल प्रयुक्त हुई है। यह कथा 'जयभारत' के अतिथि और 'आतिथेय' नामक सर्ग मे ज्यो की त्यो मिलती है।

९. वन वैभव—

प्रस्तुत रचना का प्रकाशन समय सं० १९८४ है। 'बकसंहार' की भाँति इस काव्य की कथा भी महाभारत से ली है तथा पात्र भी महाभारत के है। गुप्तजी ने इस नवम खण्ड-काव्य का नामकरण 'वन-वैभव' इसलिए किया है कि पाण्डवो ने वन मे निवास करते हुए भी कौरवो को यज्ञ के द्वारा नष्ट होने से बचाया। घटना को प्राधान्य दिया गया है। पाण्डवो के वन मे निवास करते समय उसी बन के एक सरोवर के पास मृगया हेतु निसृत कौरवो मे यक्ष की लडाई होती है। कौरवो को बुरी तरह से पराजित हो जाना पडता है। उसी समय कौरवो का एक भृत्य पाण्डवो के समीप सहायता की याचना करता हुआ समस्त घटना को सुना देता है। यहा युधिष्ठिर में आत्मीयता का समावेश हो जाता है। वे भावुक हो जाते हैं। भीम कौरवो की परिस्थितियो से अनुचित लाभ उठाकर उन्हे नीचा दिखलाना चाहता है, किन्तु युधिष्ठिर 'भीम शरणागत का अपमान' तुम्हारा कहा गया है ज्ञान' कह कर भीम को ऐसा करने मे रोकते हैं तथा अर्जुन को कोरवो की निष्कृति हेतु भेज देने है। यहा युधिष्ठिर के आदर्श-चरित्र की प्रतिष्ठा की है। कवि गान्धीवादी विचारधारा से प्रभावित, होकर—मनुष्य को नही उसकी बुराइयो को घृणा करो' का पाठ युधिष्ठिर के द्वारा सिखलाता है। यक्ष की पराजय के उपरान्त कौरव लज्जित होकर चले जाते है। युधिष्ठिर कौरवो को अपना भाई समझते हैं। वीर-रस प्रधान रचना है। शुद्ध भाषा का निर्वाह हुआ है। खडी बोली की सुन्दर रचना है। यह कथा 'जय भारत' के 'वन वैभव' नामक सर्ग में ज्यो की त्यो मिलती है।

१०. हिडिम्बा—

गुप्तजी की दसवी रचना है जिसका रचना का समय सं० १९८५ के आस पास है। महाभारत की कथा को ही ग्रहण किया है। पात्र सभी 'महाभारत' के प्रथित पात्र हैं। महाभारत की हिडिम्बा इतनी सात्विक-वृति वाली नही है जितनी गुप्तजी की हिडिम्बा है। भीम वन मे पिपासाकुल माता तथा श्रान्त बन्धुओ को छोडकर उनके लिए पानी लेने जाता है सरोवर के निकट उसे हिडिम्बा मिल जाती है। उसके हृदय में भीम को देखकर पवित्र-प्रेम की पीयुष-धारा वह निकलती है। उसने भीम के सम्मुख अपने प्रेम का निवेदन किया किन्तु आज्ञाकारी भीम अपनी माता तथा बडे भाइयो की आज्ञा के बिना कुछ नही कह पाता है। अन्त मे युधिष्ठिर तथा कुन्ती के समक्ष भीम उससे शादी कर लेता है। हिडिम्बा के भाई हिडिम्ब को जब यह ज्ञात होता है तो वह भीम से युद्ध करने को तत्पर होता है तथा भीम उसका वध कर डालता है। हिडिम्बा वही रह जाती है जो भीम के सम्बन्ध से

घटोत्कच को जन्म देती है। इसमें हिडिम्बा के चरित्र का उदात्तीकरण प्रस्तुत किया गया है। वह काव्य की नायिका है। इसीलिये 'हिडिम्बा' नाम से काव्य को कहना उचित समझा गया है। एक-निष्ठ-प्रेम तथा हृदय की पावनता ही स्त्री के लिए सफलता का मार्ग प्रशस्त करते हैं साथ ही साथ क्रूर वृत्तियो का परित्याग सबको रुचिकर प्रतीत होता है। पचवटी की शूर्पणखा से हिडिम्बा भिन्न है। एक बिनय के असफल हो जाने पर भय से काम वासना की पूर्ति चाहती है तो एक विनम्रता से कुलवती जाया बनने की कामना अभिव्यक्त करती है। जहा भीम तथा हिडिम्बा के सवाद हैं शृंगार रस का परिपाक है, वहा हिडिम्ब से युद्ध करते समय वीर रस आ जाता है तथा भाषा भी तदनुकूल परिवर्तित होती जाती है। 'हिडिम्बा' नामक सर्ग भी सूक्ष्म रूप मे 'जयभारत' में मिलता है।

११. युद्ध—

इस ११ वें खण्डकाव्य का सृजन 'हिडिम्बा' काव्य के आस पास ही हुआ हैं। घटना प्रधान-काव्य है जैसा कि उसके शीर्षक से ही अनुमान किया जा सकता है। उपर्युक्त अन्य खण्ड काव्यो की भांति इस काव्य की कथा भी महाभारत से संकलित है। भगवान कृष्ण अर्जुन के रथ के सारथि मात्र होने तथा युद्ध-स्थल में शस्त्र-धारण कर युद्ध न करने की प्रतिज्ञा कर चुके थे किन्तु भीष्म पितामह इतना भयकर युद्ध करते हैं कि पाण्डव सेना ही नही स्वय धनजय का भी गाण्डीव काप उठता है। ऐसी परिस्थिति में कृष्ण अपने परमभक्त तथा मित्र अर्जुन को कातर देखकर अपनी प्रतिज्ञा की चिन्ता न करके शस्त्र-ग्रहण करके भीष्म के समक्ष आ जाते है किन्तु शस्त्र-पाणि कृष्ण के समक्ष भीष्म उनकी प्रतिज्ञा का स्मरण कराके चरणो पर गिर जाते हैं। युद्ध काव्य मे इसी घटना का प्राधान्य है। नाम की सार्थकता इस कृति की अपनी विशेषता है। इस विषय को लेकर नाटक आदि भी लिखे गए हैं। भाषा परिष्कृत तथा वीर रस के अनुकुल प्रयुक्त हुई है।

१२. विकट भट—

इस रचना का सृजन काल स० १९८५ है। कालक्रम की दृष्टि से इसे गुप्तजी का १२वा खण्डकाव्य कह सकते हैं। ऐतिहासिक कथावस्तु, काव्य के कलेवर का निर्माण करती है। राजा विजय सिह अपने अहभाव में आकर देवीसिह तथा जैतसिह नामक दो परम मित्रों को उनके कटु सत्य बोलने के कारण मृत्यु के घाट उतरवा देता है। इन दोनो वीरो के ही वश मे देवीसिंह का पुत्र सबलसिंह भी उसी बात के कहने पर वीरगति को प्राप्त हुआ। सबलसिंह का पुत्र अथवा देवीसिह का पौत्र, सवाई सिंह गुप्तजी का विकटभट है। जिसके नाम पर काव्य को नाम दिया गया है। यह अत्यन्त ही निर्भय क्षत्रिय कुमार है।

शत्रु के समक्ष वह अपने पूर्वजो के वचनो पर दृढ़ रहता है । मृत्यु का उसे भय नही है । उसकी स्पष्टवादिता तथा पराक्रम का विजयपालसिंह पर अनुकूल प्रभाव पडता है वह उस पराक्रमी युवक को स्नेहालिंगन के साथ साथ देवीसिंह तथा जैतसिंह की निर्मम हत्या के प्रति प्रायश्चित प्रदर्शित करता है । काव्य में वीर रस का सचार हुआ है । करुण तथा वीभत्स भी अगरस बनकर आते हैं । भाषा की दृष्टि से काव्य अधिक सुन्दर है उसमे हिन्दो के तत्सम तथा तद्भव शब्दो का प्रयोग साथ साथ हुआ है । इसकी सबसे बडी विशेषता है कि रचना का कलेवर अतुकान्त छन्दो मे प्रस्तुत किया गया है । जहा गुप्तजी की लेखनी निर्बाध होकर चलती है वहा वह अनुभूति देती है और काव्य के यथार्थ अर्थ का द्योतन करती है । ठीक वैसी ही विशेषता प्रस्तुत काव्य मे पाई जाती है ।

१३. गुरुकुल--

सं० १६८५ मे लिखित 'गुरुकुल' कृति ऐतिहासिक कथावस्तु का आधार लेकर प्रस्तुत की गई है । इसको गुप्तजी का तेहरवा काव्य मान सकते हैं । सिक्ख-गुरुओ की क्रमागत परम्परा काव्य का विषय बन कर आई है । कालिदास के 'रघुवंश' मे जिस प्रकार अनेक नायक है ठीक उसी प्रकार गुरुकुल में भी नायक परिवर्तित होते रहते हैं । गुरुकुल वर्ण्य विषय होने के कारण ही रचना का नामकरण किया गया है । गरुकुल में गुरु नानक, रामदास, हरिगोविन्दसिंह, गोविन्दसिंह, जोरावर, फतहसिंह, तेग बहादुर तथा बन्दा वैरागी आदि के चरित्रो तथा कृत्यो का वर्णन है मुसलमानो से गुरुकुल का सदैव सघर्ष रहा एवं गुरुकुल के गुरु सघर्ष का सामना बडी वीरता से करते रहे । उनके बहुधा बलिदान भी हुए । एकता की प्रवृत्ति तथा मतभेदो के निराकरण के दृष्टिकोण से ही प्रस्तुत काव्य की सृष्टि हुई है जैसा कि काव्य की भूमिका मे लिखित पंक्तिया से देखा जा सकता है :—

> "लेखक ने जहा तक हो सका है मतभेदो की बातो से अपने को बचाया है । यदि इस पुस्तक से हम मे परस्पर कुछ भी एकता की प्रवृत्ति उत्पन्न हुई तो लेखक का सारा श्रम सार्थक हो जायगा ।"[1]

जहा काव्य मे वीर रस मिलता है भाषा ओज पूर्ण है । अन्य स्थलो हर वह प्रबन्धानुकूल है ।

१४. यशोधरा--

यशोधरा के विषय मे ऊपर कुछ कह दिया गया है । यद्यपि यह रचना चम्पू काव्य की कोटि में आती है किन्तु फिर भी कथा के क्रमिक-विकास को ध्यान में रख कर

---

१ – गुरुकुल, पृ० २४

खण्ड काव्य मान सकते हैं। यह गुप्तजी का १४ वा काव्य है जिसका रचना काल सं० १९८९ है। 'साकेत' के पश्चात् गुप्तजी ने रचना में पुनः उपेक्षिता गोपा की ओर दृष्टि-निक्षेप किया। उसके मा तथा वियुक्त पत्नी के स्वरूपो का कवि ने बडे सुन्दर ढग से वर्णन प्रस्तुत किया है। वह राहुल की जननी है तो सिद्धार्थ की वियोगिनी गोपा है। वह पुत्र के लिए गाती है तथा पति के लिए रोती है। गुप्तजी ने सिद्धार्थ की ससार के प्रति उच्चाटन का प्रारम्भ में ही परिचय दे दिया है, पुत्रवती वियोगिनी वनिता का रूप चित्र इन पंक्तियो से देखा जा सकता है:—

अबला जीवन हाय! तुम्हारी करुण कहानी,
आचल मे है दूध और आखो मे पानी।[1]

गुप्तजी की नारी भावना इस काव्य में मुखरित हो उठी है। यशोधरा ही काव्य का विषय बनती है। विप्रलम्भ शृंगार तथा वात्सल्य रस का प्राधान्य है। भाषा काव्य के प्रवाह के अनुकूल है किन्तु कही कही तुक के मोह ने काव्यत्व पर आघात किया है। और ऐसा ज्ञात होता है कि मानो कवि को शब्द ही नही मिल रहे हैं। 'जोहू जाहू' या 'पल्ला भाड़ू' आदि शब्द तुक के प्रति मोह का प्रकटीकरण करते हैं।

बौद्ध कथा का आधार लेकर चलने वाली यह कृति गुप्तजी के काव्यो में महत्व-पूर्ण स्थान रखती है। हिन्दी जगत में इसका भव्य स्वागत हुआ है।

१५. सिद्धराज—

यह एक ऐतिहासिक रचना है जो सवत १९९३ में हिन्दी-साहित्य में अवतरित हुई। यह गुप्तजी का १५ वा खण्ड काव्य है। उनकी उत्कर्ष कालीन रचनाओ में इस कृति का महत्वपूर्ण स्थान है। सिद्धराज जयसिंह १२ वी शताब्दी का क्षत्रिय राजा है। उसका नाम जयसिंह है और सिद्धराज उसकी सम्बोध्य उपाधि है। नायक के नाम पर ही काव्य का नाम करण किया गया है। जीवन के खण्ड रूप का चित्रण प्रस्तुत किया है। शुद्ध खण्ड काव्य के सारे लक्षण इस कृति मे उपलब्ध होते हैं। पाच सर्गों में विभाजित है। प्रथम, द्वितीय तथा तृतीय सर्ग के मध्य तक सिद्धराज के शौर्य का वर्णन, मातृ-प्रेम को प्राधान्य मिला है। किन्तु तृतीय सर्ग में जयसिंह की पाशविक वृत्ति का निरूपण भी कवि ने प्रस्तुत किया है। किन्तु गुप्तजी ने उस पतन के परिवेश में यह उपदेश दे दिया है—

भूल इस भव मे, मनुष्य से ही होती है,
अन्त मे सुधारता है उसको मनुष्य ही।
किन्तु वह चूक, हाय, जिसके सुधार का,

---

१ – गुप्तजी–यशोधरा, पृ० ४७।

रहता उपाय नही हूक बन जाती है,
और जन-जीवन बिगड़ जैसे जाता है।[1]

चतुर्थ तथा पंचम सर्ग में जयसिंह पुनः उदार-वृत्ति हो जाता है। राणकदे के प्रति पाशविक व्यवहार तथा उसके दो बच्चो की निर्मम-हत्या उसे कष्ट देती है। अपनी पुत्री काचनदे को अर्णोराज के साथ ब्याह कर वह सच्चा पिता बन जाता है। अर्णोराज तथा काचनदे का जहा वार्तालाप है वहा शृंगार रस पाया जाता है जैसा कि अधोलिखित पंक्तियो से देखा सकता है :—

एक क्षण ऐसा इस जीवन मे आता है,
एक पल मे जो नई सृष्टि रच जाता है।
मुग्धा एक क्षण मे ही मध्या बन जाती है।[2]

जगद्देव नामक पात्र का चरित अत्यन्त सुन्दर दिखाया गया है। जिसका विस्तृत चरित रासमाला[3] मे प्राप्य है। प्रारम्भिक सर्गों का वीर तथा अन्तिम सर्ग का शृंगार सहृदय पाठको को विमुग्ध कर देता है। भाषा तत्सम शब्द प्रधान है। उदाहरणार्थ तोरण, स्वर्णकलश, शिविर कक्ष आदि शब्द गिनाए जा सकते हैं।

१६. नहुष——

प्रस्तुत १६ वें खण्डकाव्य का प्रतिपादन सं० १९९४ के आस पास किया गया। यह एक पौराणिक काव्य है न केवल तथावस्तु अपितु पात्र भी पौराणिक ही हैं। 'जयभारत' के 'नहुष' नामक सर्ग के अन्तर्गत यही कथा ज्यो की त्यो प्रस्तुत की गई है। ब्रह्म-हत्या के परिशोध के लिए इन्द्र को पद-च्युत होना पडता है तथा नहुष को इन्द्र की पदवी से विभूषित, किया जाता है। नहुष सुरेश बनकर पतनोन्मुख होता है। इन्द्र-पत्नी शची के सतीत्व पर कुठाराघात की भावना उसे अन्धा बना देती है। इतना ही नही अपितु शची को प्राप्त करने के लिए पालकी मे बैठकर जाता है जिसको ऋषिगण वहन करते हैं। किन्तु दम्भ का घडा फूटता है तथा ऋषियो के शाप के वशीभूत होकर नहुष सर्प की योनि पाता है। प्रस्तुत काव्य में नहुष की कथा प्रमुख है। नहुष के चरित्र का उत्कर्ष तथा पतन एक साथ प्रदर्शित किया गया है।

---

१ – गुप्तजी–सिद्धराज, पृ० ८४।
२ – वही, पृ० १०२।
३ – अलैक्जेण्डर किन्लॉक फार्बस रचित 'रासमाला' [प्रथम भाग, उत्तरार्द्ध (हिन्दी)] —अनुवादक, गोपालनारायण बहुरा।

नहुष काव्य की विशेषता यह है कि वह भावना को एक सन्देश देता है वह यह कि मनुष्य को प्रभुत्व पाने पर, मानसिक सन्तुलन नही खोना चाहिए और उसमें अनधिकृत कार्यों के करने की भावना नही आनी चाहिए अन्यथा नहुष के समान पतन आवश्यक है। मनुष्य अपने कृत्यो से ही ऊपर उठता है और कृत्यो से ही गिर जाता है। मनुष्य जीवन में प्रगति तथा अधोगति सम्भव होती है तभी तो कवि कहता है :—

नारायण ! नारायण ! धन्य नर साधना[1]

सुरत्व से पुरुषत्व अधिक स्पृहणीय प्रतीत होता है। काव्य की भाषा-शैली अत्यन्त श्रेष्ठ है।

१७. अर्जन और विसर्जन—

यह खण्डकाव्य दो लघु काव्यो का सग्रह है। इसका प्रणयन स० १९९९ में हुआ था। इसको गुप्तजी का सतरहवा काव्य कहा जा सकता है। प्रथम भाग अर्जन है जिसमें दमिश्च की घटना लेकर कवि चला है उसने घटनाकाल को विक्रमी सातवी शती का स्वय बतलाया है। अरब-अनीकिनी ने दमिश्च पर आक्रमण किया। युद्ध चलता रहा। दमिश्च सेना नायक टमास भी युद्ध मे काम आगया। दमिश्च मे इउडोसिया तथा जोनस नामक प्रेमिका प्रेमी भी रहते हैं। इउडोसिया देश-भक्ति तथा धार्मिक भावना से युक्त है। अपनी जन्म-भूमि के सकट के समय वह जोनस की नसो मे उत्साह भर देती है किन्तु जोनस उसे किसी न किसी प्रकार अपनी पत्नी बना लेना चाहता है। युद्ध में अरब-अनीकिनी विजयिनी होती है। जोनस पराधीन होकर तथा अरब-सेनापति के समक्ष इउडोसिया को प्राप्त कराने का आश्वासन लेकर मुसलमान धर्म स्वीकार कर लेता है। अरब-सेना-पति की आज्ञानुसार इउडोसिया दमिश्च का परित्याग करना चाहती है क्योकि वह मुसलमान राज्य मे रहना नही चाहता। जोनस उसे प्राप्त करने की चेष्टा करता है किन्तु वह उस को मुसलमान धर्म के अर्जन का उपालम्भ देती है। और कहती है कि ऐसा उसका पति नही हो सकता है। जिस जोनस को प्रेम करती थी उसका वह मुख भी नही देखना चाहती है। अन्त में कटार मार कर मर जाती है। इस प्रकार यह इउडोसिया तथा जोनस को कथा से ही अर्जन खण्ड कलेवर प्रस्तुत किया गया है।

विसर्जन का घटनास्थल उत्तरी अफ्रीका है तथा घटनाकाल विक्रमी आठवी शती का है जैसा कि गुप्तजी ने कृति में संकेत किया है। मूर प्रदेश में काहिना नामक रानी है उसका प्रभुत्व सर्वत्र व्याप्त है। मुहम्मद शाह अरब सेना लेकर मूर प्रदेश पर आक्रमण करते हैं किन्तु मूर-सना जीत जाती है। काहिना दूरदर्शिनी है। वह जान लेती है कि

---

१ — गुप्तजी—नहुष, पृ० १२।

अरब जाति अभी फिर युद्ध को आयेगी। अतएव वह अपने प्रजाजनो को त्याग का सन्देश देती है। सब धन आदि को छिपाने तथा देश को उजाडने तक की आज्ञा दे देती है। जिससे अरब के व्यक्ति कुछ न प्राप्त कर सकें। साथ ही साथ वह मुहम्मद शाह के प्रति भर्त्सना भी करती है। काहिना अपने प्रजा जनो को उपदेश देती है कि जितना ने यहा त्याग करेंगे उससे सौ गुना उन्हे मिल जायेगा। वह त्यागमयी तथा पुनर्जन्म मे विश्वास करने वाली है। इस प्रकार यह काव्य यहा समाप्त हो जाता है।

१८. काबा और कर्बला—

गुप्तजी के इस अठारवें खण्ड काव्य मे भी "अर्जन और विसर्जन" की भाति दो लघु खण्ड काव्यो का सग्रह है। प्रथम खण्ड काबा के नायक मुहम्मद शाह हैं तथा कर्बला खण्ड के नायक मुहम्मद शाह के नाती हुसैन हैं। इनका अरब जाति के प्रति सदैव युद्ध होता रहा तथा इनको अनेक प्रकार की यातनाएं भी झेलनी पडी। युद्ध का भयंकर चित्र प्रस्तुत किया गया है। विधवाए भी अपने इकलौते पुत्रो को युद्ध के लिए भेजती हुई दिख-लाई गई है। कहा समस्त अरब जाति तथा कहा गिने चुने ये धर्म प्रतिष्ठापक ? अन्त मे इनकी पराजय होती है। घटना काव्य होने के कारण घटना-स्थल के नाम पर भी काव्य को " काबा और कर्बला " नाम दिया गया है। हिन्दू तथा मुसलमानो में ऐक्य उत्पन्न करना ही काव्यकार का लक्ष्य प्रतीत होता है। भाषा सामान्य खड़ी बोली का रूप है। कर्बला खण्ड का नायक मुहम्मद शाह का नाती इमाम हुसैन है।

१९. गुरु तेग बहादुर —

यह काव्य अत्यन्त छोटा है। जिसको १९ वा काव्य मान सकते हैं। "गुरुकुल" नामक रचना मे भी गुरु तेग बहादुर का सुन्दर चरित्र प्रदर्शित किया गया है। यथार्थतः इसकी कथावस्तु खण्ड काव्य के लिए छोटी है। किन्तु जो हो गुप्त जी के खण्ड काव्यो की सख्या मे वृद्धि का तो योगदान मिल ही जाता है। गुरु तेग बहादुर गुरु परम्परा तथा वश के सप्तम गुरु थे। इसका रचनाकाल "गुरुकुल" से पूर्व माना जा सकता है। भाषा शैली गुरुकुल जैसी ही है।

२०. अजित —

यह गुप्त जी का समाजिकता से परिपूर्ण काव्य है। स० २०१५ मे लिखा जाने के कारण इसे बीसवा खड काव्य मान सकते हैं। अजित, चतरा एवं दादा श्यामसिंह जन साधारण से आये हैं। ऐसे पात्रो का प्रयोग आधुनिक कविता में अधिकता से हुआ है। कुछ लोग इसे आत्मकथा समझने का भ्रम कर बैठते हैं, किन्तु वास्तव मे यह आत्मकथात्मक

कथात्मक शैली मे लिखा गया खण्ड काव्य है। अजित, काव्य का नायक तथा प्रमुख पात्र है और उसी के नाम पर काव्य का नामकरण कर देना कवि को संगत प्रतीत हुआ है। समाज की विडम्बनाओं से व्यथित रह कर उसे बिना अपराध कारावास भोगना पडा। वहा के गर्हित जीवन को व्यतीत कर लौटे हुए अजित को घर उजडा हुआ मिलता है तथा उसके परिणाम स्वरूप आक्रोश तथा प्रतिक्रिया की भावना उसे समाज के सौम्य व्यक्ति से डाकू बना देती है किन्तु चतरा अजित का मार्गदर्शक है। वह अपनी वाणी से अजित की वृत्तियो का उदात्तिकरण करता है। दादा श्याम सिह से अजित को देशभक्ति की शिक्षा मिलती है। प्रस्तुत काव्य मे पुलिस पर गहरा व्यग्य किया गया है। थानेदार का उत्कोच लेकर चोरो के कुकृत्य को प्रोत्साहन देना आधुनिक युग का सत्य है। समस्त काव्य १५ भागो मे विभाजित किया गया है। देश भक्ति की सुन्दर शिक्षा भी दी गई है। अहिसा, मानवतावाद का सन्देश ही रचना का लक्ष्य है। इस चरितात्मक काव्य के सभी पात्र वर्ग के प्रतिनिधि है। अजित के द्वारा गान्धीवादी जीवन आदर्शों की प्रतिष्ठा कराई गई है। इसमे दृश्य विधान सिद्धान्त निरूपण, सवाद योजना, सूक्ष्म प्रसग, घटनात्मक और वास्तविक जीवन का वर्णन सर्वोपरि है। गुप्तजी की यह आधुनिक तथा सामाजिक रचना अधिक महत्वपूर्ण है।

२१. विस्णु प्रिया —

यह गुप्त जी की नवीनतम रचना है। इसके उपरान्त कोई अन्य रचना अभी गुप्त जी ने नही दी है। इसको २१ वें खण्ड काव्य के रूप मे स्वीकार किया जा सकता है। इसका प्रकाशन काल स० २०१४ है। साहित्यकार ने विष्णु प्रिया को उर्मिला की चरित्र-कल्पना का विकास माना है। नवद्वीप के मायापुर ग्राम में जगन्नाथ और शची को गौर हरि पुत्र प्राप्त हुआ। गौर के अग्रज विश्वरूप बाल्यावस्था मे ही सन्यासी हो गए। जगन्नाथ का भी स्वर्गवास हो गया। शची वैधव्य-यापन करती हुई जीवित रही। विष्णु-प्रिया के हृदय मे पूर्व राग श्रद्धा-भाव से गौर के प्रति प्रकट हुआ, किन्तु वे उसका परित्याग करके तपस्या के लिए चले गए। अब विष्णु प्रिया के समक्ष न केवल रोने की समस्या है अपितु सास की सेवा और जीविकोपार्जन की भी समस्या है। यदि यशोधरा के साथ राहुल है तो विष्णु-प्रिया के साथ सास है। शिशु से मनोविनोद करके विरहावस्था को हलका किया जा सकता है, सास द्वारा नही। वह तो स्वयं ही पति तथा पुत्र के अभाव में दुखित है। जो स्वय प्रसन्न नही, वह दूसरे को क्या प्रसन्न करेगा। इस दृष्टि से विष्णु प्रिया का जीवन और करुणामय हो जाता है। विष्णु प्रिया का पति के प्रति एक निष्ठ प्रेम है। तपस्या के उपरान्त गौर प्रभु ही उसकी व्यथा को मिटाते हैं। शृगार के ऐन्द्रिक तथा भोग-निष्ट स्वरूप को नही अपनाया गया है। काव्य की नायिका, नारीत्व का उत्कर्ष,

प्रेम का माहात्म्य ग्रोर पत्नीत्व का आदर्श प्रस्तुत करती है। आधुनिक खडी बोली का नवीनतम रूप 'विष्णु प्रिया' काव्य मे मिल जाता है।

उपर्युक्त प्रबन्ध काव्यो का विषय की दृष्टि मे तीन खण्डो मे रख सकते है—

१. पौराणिक काव्य —

पौराणिक काव्यो से तात्पर्य उन काव्यो से है जिनमे वस्तु और पात्र शुद्ध रूप से पौराणिक हो। गुप्तजी के साकेत, जय भारत, जयद्रथ वध, शकुन्तला, पचवटी, शक्ति, सैरन्ध्री, वन वैभव, बक-सहार, युद्ध, नहुष प्रबन्ध काव्य शुद्ध पौराणिक काव्यो की कोटि मे रखे जा सकते है।

२. ऐतिहासिक —

इस वर्ग के अन्तर्गत वे रचनाए आती हैं, जिनके पात्र तथा कथावस्तु पूर्ण रूप से ऐतिहासिक होते हैं। इस वर्ग मे गुरुकुल, गुरु तेग बहादुर, विकट भट, यशोधरा, रग मे भग और विष्णु प्रिया आदि काव्यो को रखा जा सकता है।

३. सामाजिक —

सामाजिक विषय तथा पात्र या वर्ग के पात्रो के आधार पर लिखित काव्य सामाजिक काव्य की कोटि मे आता है। गुप्तजी की 'अजित' तथा 'किसान' कृतियो को सामाजिक काव्यो की कोटि मे रख सकते हैं। प्रायः गुप्तजी के प्रबन्ध काव्य पौराणिक, ऐतिहासिक तथा सामाजिक ही हैं। उनका कोई भी काव्य शुद्ध रूप से मिश्रित ऐतिहासिक या मिश्रित पौराणिक काव्यो की कसौटी पर खरा नही उतरता है।

निष्कर्ष —

अतएव गुप्त जी के प्रबन्ध काव्यो को रूप की दृष्टि से महाकाव्य तथा खण्ड काव्य दो भागो मे विभक्त कर सकते हैं। जिनमें दो महा काव्य तथा लगभग २१ खण्ड काव्य शिथिल मापदण्डो के आधार पर कहे जा सकते हैं। विषय की दृष्टि से उनके प्रबन्ध मुख्य रूप से तीन— पौराणिक, ऐतिहासिक और सामाजिक कोटियो मे रखे जा सकते हैं। नि सन्देह गुप्तजी का प्रबन्ध-काव्यो के क्षेत्र मे एक बडा भारी योग-दान है।

तृतीय अध्याय

गुप्त जी के प्रबन्ध काव्यों के प्रमुख पात्र

प्रबन्ध काव्यो की कथा का विकास पात्रो के सबन्ध से होता है। प्रबन्ध के अनेक पात्र पारस्परिक सबन्ध के कारण ही एक उद्देश्य की पूर्ति मे सहयोग देते हैं। और तो और खल नायक तक प्रबन्ध के उद्देश्य की दिशा मे ही अपने चरित्र को प्रेरित करता सा प्रतीत होता है।

गुप्तजी के प्राय. पात्र ऐतिहासिक हैं, जिनमे पौराणिक पात्रो का भी समावेश किया जा सकता है। थोडे से पात्र काल्पनिक भी हैं। ऐतिहासिक पात्रो से तात्पर्य उन पात्रों से है जिनका विवेचन इतिहास में मिलता है। इसी प्रकार पौराणिक पात्र भी पुराणो मे प्रथित होते हैं। यद्यपि पौराणिक पात्रो की कोई ऐतिहासिक पृष्ठभूमि नही होती है किन्तु फिर भी वे इतने ही महत्वपूर्ण होते हैं जितने एतिहासिक। इसका एक मात्र कारण यह है कि पुराणो का भारतीय सास्कृतिक जीवन से गहरा सबंध रहा है। अत पौराणिक पात्र भी हमें ऐतिहासिक से प्रतीत होते हैं। काल्पनिक पात्रो से तात्पर्य उन पात्रो से है जो कवि के मस्तिष्क से सृजित होते हैं। इन पात्रो के माध्यम से सृष्टा प्राय अपनी मान्यताओ को प्रस्तुत कर देता है। इसलिए इन पात्रो का भी एक महत्वपूर्ण स्थान होता है।

यह कहने की आवश्यकता नही है कि प्रबन्ध में कुछ पात्र प्रमुख होते हैं और कुछ पात्र गौण। यह आवश्यक नही कि केवल नायक अथवा नायिका ही प्रमुख पात्र की कोटि मे आवें उनके अतिरिक्त वे भी पात्र, जो नायक-नायिका के चारित्रिक विकास तथा कथावस्तु को रोचक बनाने मैं योगदान देते हैं, प्रमुख पात्र हो सकते हैं। गुप्तजी की कुछ रचनाए ऐसी हैं जिनके नामकरण से ही प्रमुख पात्र की सूचना मिल जाती है। उदाहरणार्थ यशोधरा, अजित, सैरन्ध्री, हिडिम्बा आदि काव्यो का नाम लिया जा सकता है। किन्तु कुछ रचनाए ऐसी भी हैं जिनमे प्रमुख पात्र निर्धारण की जटिल समस्या है। इस प्रकार के काव्यो मे साकेत, वन वैभव, बक सहार, आदि को लिया जा सकता है। इनमें से साकेत के प्रमुख पात्र की समस्या है।

१. साकेत —

साकेत की कथावस्तु के दो प्रमुख पहलू हैं। प्रथम उर्मिला और लक्ष्मण के प्रेमाख्यान से संबन्ध रखता है और दूसरा राम की कथा से किन्तु समस्त काव्य के अध्ययन

करने के उपरान्त ऐसा ज्ञात होता है कि राम के द्वारा रावण-वध काव्य का प्रमुख ध्येय नहीं रह पाता अपितु विरहणी उर्मिला तथा लक्ष्मण का सम्मिलन ही काव्य का लक्ष्य है। इस प्रकार यदि कहा जाय कि राम की कथा उर्मिला लक्ष्मण की कथा मे परिवर्तित हो गई है तो समीचीन ही होगा। उसमे राम का आदर्श है तो उर्मिला के चरित्र की प्रतिष्ठा। राम कथा से तो कवि क्रमागत वश परम्परा के परिणाम स्वरूप अभिभूत था ही किन्तु उसी कथा मे एक आदर्श नारी पात्र को उपेक्षा की दृष्टि से देखा गया था, अत कवि ने उसके महत्व के प्रदर्शन का अवसर प्राप्त कर लिया क्योंकि उसके यहा तो भाग्य या अभाग्य मे प्रसग आ ही जाता है। इस अवसर का लाभ उठाने की प्रेरणा मिली आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी तथा रवीन्द्र नाथ टैगोर की वाणी से। गुप्तजी ने उर्मिला के साथ सहानुभूति तथा रामायण के अन्य पात्रो के प्रति श्रद्धा के निर्वाह की चेष्टा की है जैसाकि उनकी अधोलिखित उक्तियो से दृष्टव्य है —

"यद्यपि मेरी सहानुभूति उर्मिला के साथ बहुत थी फिर भी मेरी श्रद्धा और पात्रो को न छोड सकी सबके विषय मे मुझे श्रद्धा प्रकट करनी थी।" [1]

साकेत मे ऊर्मिला और लक्ष्मण के प्रेम की वह झलक है जो भोग मे आरम्भ हो कर वियोग झेलती हुई योग मे परिवर्तित हो जाती है। यह तथ्य महात्मा गाधी को पत्र लिखते समय कवि ने स्वय स्वीकार किया है —

"साकेत मे मैने कालिदास की प्रेरणा से, उस प्रेम की एक झलक देखने की चेष्टा की है, जो भोग से आरम्भ हो कर वियोग झेलते हुए योग मे परिणित हो जाता है। प्रथम सर्ग मे उर्मिला का प्रेम भोग-जन्य किवा काम जन्य है। उसी को योग-जन्य अथवा राम जन्य देखने के उद्योग मे साकेत की सार्थकता है।" [2]

साकेत काव्य के नायक निर्धारण का प्रश्न विद्वानो के मस्तिष्क का परिश्रम बन रहा है। राम धरा के भार को हल्का करने के लिए अवतरित हुए हैं। तो लक्ष्मण इनकी सेवा के लिए और उर्मिला साकेत की तपस्विनी है। जो अपने पति की सेवा के साफल्य की कामना साकेत मे रह कर करती है। इन तीनो ही पात्रो का प्रस्तुत काव्य मे प्रमुख स्थान है और विद्वानो ने इन्ही मे से किसी एक को काव्य का नायक सोचा है। यदि कार्य की दृष्टि से देखा जाय तो ज्ञात होता है कि तीनो पात्रो के चरित्र का विकास काव्य की कथा का विषय है।

गुप्तजी के 'राम' तुलसी के राम तथा अर्जुन के कृष्ण से पृथक नही कहे जा सकते हैं क्योंकि साकेत के तथा मानस के 'राम' जन भय तथा मुनियो के विघ्न भजन

---

१ – डा० नगेन्द्र, साकेत एक अध्ययन, पृ० १६।

२ – कवि का महात्मा गाधी को एक पत्र, चिरगाव, राम नवमी, स०१६८६।

के लिए अवतरित हुए हैं। चाहे कथा का स्वरूप आगे जाकर कुछ भी रहा हो किन्तु राम के लोक रक्षक तथा रजक दोना स्वरूपो का चित्रण हुआ है। इस सवन्ध मे साकेत को ये पक्तिया दृष्टव्य हैं —

उभय विधि सिद्ध होगा लोक रंजन,
यहा जन भय वहा मुनि विघ्न भजन।
मुझे था आप ही बाहर विचरना,
धरा का धर्म भय था दूर करना।[1]

अत इस कथा वृत के आधार पर राम को नायक मानने वाले विद्वानो में डा० प्रतिपाल सिह तथा त्रिलोचन पाण्डेय का नाम गिनाया जा सकता है। साकेत के तृतीय सर्ग मे हमे राम के दर्शन होते है। चतुर्थ, पचम, षष्ठ सर्गो के पश्चात अष्टम सर्ग में आते हैं। तदउपरान्त राम की कही कही झलक मिलती है किन्तु राम काव्य के प्रमुख पात्र हैं, इसमें सन्देह को स्थान नही।

यदि साकेत की पृष्टभूमि पर विचार किया जाय तो ज्ञात होता है कि कवि ने साकेत से प्रथम उर्मिला नामक काव्य लिखने का उपक्रम किया था किन्तु उसको अपूर्ण ही रख कर साकेत प्रारम्भ कर दिया और उसी उर्मिला काव्य ने साकेत की पृष्टभूमि का कार्य किया है। उर्मिला साकेत मे अपना प्रमुख व्यक्तित्व ही नही नायकत्व लेकर अवतरित हुई है। साकेत के प्रारम्भ में हो उर्मिला लक्ष्मण के सवाद पाठको को यह सूचना दे देते कि इस काव्य में इस दम्पति की ही कथा हैं। उर्मिला के प्रति लक्ष्मण के शब्द कितने सुन्दर हैं।

स्वर्ग का यह सुमन धरती पर खिला,
नाम इसका उचित ही है उर्मिला।
नाक का मोती अधर की कान्ति मे,
बीज दाडिम का समझ कर भ्रान्ति से।
देखकर, सहास हुआ शुक मौन है,
सोचता है अन्य यह शुक कौन है।[2]

सुमन के समान विकसित उर्मिला प्रथम सर्ग के पश्चात् अष्टम सग में कोणस्थ रेखा के रूप में चित्रकूट मे प्रकट होती है। सौमित्र इसको पहिचानने में भी कठिनाई का अनुभव करते हैं किन्तु वह भारती ललना अपने पति के सन्तोष मे ही सन्तोष का अनुभव

---

१ – गुप्तजी–साकेत, तृतीय सर्ग, पृ० ५७।
२ – गुप्तजी–साकेत, प्रथम सर्ग, पृ० १२–१३।

करने का आश्वासन प्रदान करती है। यद्यपि इससे पूर्व छठे सर्ग मे वह लक्ष्मण से आराध्य युग्म के शयनोपरान्त स्मरण करने की प्रार्थना कर चुकी है किन्तु क्या पता लक्ष्मण ने इसका स्मरण किया अथवा नही। हा। मेघनाद वध के समय तो उर्मिला के स्मरण ने लक्ष्मण को अवश्य बल दिया। चित्रकूट मे वह लक्ष्मण से कहती है —

हा। स्वमी कहना था क्या क्या,
कह न सकी कर्मो का दोष।
पर जिसमे सन्तोष तुम्हे है,
मुझे उसी मे है सन्तोष। [1]

इतना ही कहने पाई थी कि लक्ष्मण पुन उसे छोड कर चले जाते है। इसके उपरान्त साकेत के नवम सर्ग मे उर्मिला का विरह वर्णन अत्यन्त मार्मिक है। छायावादी परम्परा मे रचित नवम सर्ग के विप्रलम्भ शृगार युक्त पद न केवल उर्मिला अपितु किसी भी विरहिणी के विषय मे कहे जा सकते है। यह प्रस्ताव भी प्रस्तुत किया गया कि उर्मिला के विषाद का अध्याहार होना चाहिए किन्तु गुप्तजी ने गाधीजी को पत्र लिखते समय यह प्रत्युत्तर दिया — "आप उर्मिला के विषाद को साकेत मे रहने दीजिए।" दशम, एकादश और द्वादश सर्ग मे उर्मिला का चित्र और विकसित होता है। साकेत के अन्तिम सर्ग मे वह साकेत की सुसज्जित सेना को अहिंसा तथा धर्म का पाठ पढाती है। अतएव डा० कमला कान्त पाठक[2] आचार्य वाजपेयी[3] और डा० नगेन्द्र [4] ने प्रस्तुत काव्य की नायका उर्मिला को माना हैं।

कतिपय विद्वानो ने लक्ष्मण को नायक माना है किन्तु वह उर्मिला के सबन्ध से। वाजपेयी जी ने तो उर्मिला के साथ साथ भरत के नायकत्व को भी स्वीकार किया है। किन्तु भरत को नायक मानने वाले बहुत कम विद्वान है। चरित्र के उदात्तिकरण के दृष्टिकोण से केकयी भी महत्वपूर्ण पात्र है। किन्तु गुप्तजी की दृष्टि प्रमुख रूप से राम, उर्मिला और लक्ष्मण पर ही रही प्रतीत होती है। अतएव इन्ही को प्रमुख पात्र माना जा सकता है। नायक के स्थान पर यदि भरत को प्रमुख पात्र कह दिया जाय तो सम्भवत. समीचीन होगा।

२. जय भारत —

कुछ विद्वान जय भारत को महाकाव्य का उदाहरण नही मानते है। परन्तु फिर

१ – गुप्तजी–साकेत, अष्टम सर्ग, पृ० २४७।
२ – डा० कमला कान्त पाठक, मैथिलीशरण गुप्त, व्यक्ति और काव्य।
३ – आचार्य वाजपेयी, आधुनिक साहित्य पृ० ४६।
४ – डा० नगेन्द्र, साकेत एक अध्ययन, पृ० २५।

भी शिथिल मापदण्डो मे नापने पर महाकाव्य कहा जा सकता है। यदि इसके शीर्षक पर विचार किया जाय तो जय भारत शब्द से भारत के किसी गान की सूचना मिलती है वह 'भारत' भारत देश नही है अपितु भरत-वंश जात युधिष्ठिर ही भारत है जिसका जयगान प्रस्तुत किया गया। इस सम्बन्ध मे डा० कमलाकान्त पाठक के ये विचार प्रेक्षणीय हैं —

"जय भारत मे मानवता की जय का विवरण प्रस्तुत किया गया है जो भरत वंशज या भारत अर्थात् युधिष्ठिर के महामानत्व का ही जयगान है।"[1]

यह विशालकाय रचना ४६ सर्गों मे विभक्त है। लगभग प्रत्येक सर्ग मे युधिष्ठिर हमारे समक्ष आते हैं। पात्रों मे भी उनका महत्वपूर्ण स्थान है किन्तु उनके शौर्य पक्ष को दबा कर उनको आदर्श-मानव के रूप में चित्रित किया गया है। कथा का अन्विति सूत्र कवि-कौशल के कारण बँधता चला गया है। इस लिए ऐसा ज्ञात होता है मानो गुप्तजी अपने इस काव्य के विषय मे ऐसी अखण्ड कल्पना निर्माण के पूर्ण धारण किए हुए नही थे। इस सम्बन्ध में रवीन्द्र नाथ टैगोर के विचार प्रेक्षणीय है :—

"कवि के मन मे रचनारम्भ से ही कथावस्तु की अखण्ड कल्पना अथवा चरित्र की कोई स्पष्ट, समग्र अथवा सश्लिष्ट धारणा कवि कर्म के प्रेरक तत्व के रूप मे नही रही"[2]

समग्र रचना के रूप मे 'जय भारत' को देखने के लिए इसकी प्रमान्विति को ही ध्यान मे रखना चाहिए। इस अन्विति के स्वरूप उपादान के विषय मे पाठक जी के ये विचार प्रेक्षणीय है —

"मानवता के आदर्श के आदर्श को, उसकी उत्थान—चेष्टा को एव उसके लौकिक और आध्यात्मिक स्वरूप की तथा उसके सैद्धान्तिक और व्यावहारिक अभिन्नत्व की अभिव्यक्ति का काव्योद्देश्य इस काव्य मे अन्विति स्वरूप का प्रमुख उत्पादन है।"[3]

काव्य में प्रत्येक आख्यान के काव्यत्व का ध्यान रखा गया है। उसमें सांस्कृतिक भावना, युग-चेतना मानव-प्रगति की चेष्टा, नारी की उच्चता, पीडितों के प्रति करुणा शत्रुओं के प्रति उदासीनता, कर्मशीलता, त्याग, भोग से विरक्ति आदि का प्रदर्शन किया है। इस सबके प्रदर्शन का माध्यम बनाया गया है युधिष्ठिर का। सभी भाई, पत्नी और

---

१ – डा० कमलाकान्त पाठक, मैथिलीशरण गुप्त, व्यक्ति और काव्य, पृ० ३६०।

२ – वही।

३ – वही।

माता कुन्ती युधिष्ठिर का सम्मान करते है । वे समस्त परिवार के उत्तरदायित्व को लिए हुए है । धर्म की सक्षात् प्रतिमा है । जब कभी भीम, अर्जुन का पौरुष अनुचित अवसर पर उबल कर, सीमा तोड़ना चाहता है युधिष्ठिर के स्युक्त वाक्यो के शीतल छीटे उसे शान्त कर देते है । उदाहरणार्थ वन वैभव मे भीम के लिये युधिष्ठिर की यह वाणी उदाहरण स्वरूप ली जा सकती है —

" भीम शरणागत का अपमान, तुम्हारा कहा गया है ध्यान " [1]

पाण्डवो के अवसान के समय भी द्रौपदी, अर्जुन, भीम, नकुल तथा सहदेव मार्ग के मध्य मे ही रह जाते है जबकि युधिष्टिर को इन्द्र का विमान लेने आता है। वे अपने श्वान सहित विमानासीन होना चाहते है किन्तु इन्द्र का सारथी इससे सहमत नही होता है । वह कहता है विमान युधिष्ठिर के लिये है न कि श्वान के लिये। किन्तु श्वान का परित्याग कर विमानासीन होना युधिष्ठिर के लिये सभव नही होता है । अन्त मे श्वान धर्म के रूप में परिवर्तित होकर 'जय जय जय भारत' का उद्घोष करता है । इस प्रकार प्रस्तुत काव्य के युधिष्ठिर नायक ठहरते हैं ।

जय भारत के कार्य (Action) का अधिकाश भाग कृष्ण के हाथ मे रहता है । वे अर्जुन के रथ के अश्वो की राशि को तो कर कमलो से धारण किये ही है परन्तु इसके साथ साथ पाण्डवो के परिवारिक कृत्यो के भी वे सूत्रधार प्रतीत होते है । समझौता कराने का अथक परिश्रम करने के उपरान्त भी सफलता न मिलने पर वे पाण्डवो को युद्ध के लिये प्रेरित करते है और युद्धस्थल मे अर्जुन के मोहावर्त में फस जाने पर अपने वचन-नौका से उसे उत्तीर्ण करके युद्ध के लिये तत्पर कराते है । यदि उस समय कृष्ण न होते तो अनेक अत्याचारियो का वध न हो पाता, असत् की विजय रहती तथा पृथ्वी मे अधर्म का राज्य रहता । इन सब के विध्वंस के लिये उन्हे स्वय झूठा बनना पडा। 'युद्ध' नामक खण्ड मे प्रतिज्ञा भूल कर शस्त्र-ग्रहण करना तथा जयद्रथ-वध के समय सूर्य को अस्तंगत सा दर्शाकर फिर चमकाना सब इसीलिए तो किया था । किन्तु उनका सम्बन्ध व्यक्तिगत रूप से अर्जुन से अधिक है । कृष्ण का चरित्र प्रमुख कवि का ध्येय नही है । अत 'जयभारत' में युधिष्ठिर प्रमुख-पात्र है । इस विषय मे मत वैभिन्य नही हैं ।

३ रंग में भंग —

प्रस्तुत कृति एक घटना विशेष पर आधारित है जिसमें बूंदी नरेश वीरसिंह तथा लालसिंह की कन्या के विवाह की शहनाइया युद्ध भेरियो मे परिवर्तित हो जाती है । समस्त रचना दो भागो में विभक्त है । प्रथम भाग में राजकुमारी के आदर्श चरित्र तथा

---

१ – गुप्तजी- वन वैभव, पृ० ३२ ।

पतिपरायणता का उल्लेख है तथा द्वितीय भाग मे कुम्भा की देश भक्ति प्रदर्शित की गई है। पाणिग्रहण-सस्कार पूर्ण होने के उपरान्त वर-पक्षीय राजकवि ने वर खेतलसिंह की अत्युक्ति पूर्ण प्रशस्ति की, जो बून्दी-नरेश लालसिंह के अनुज वीरसिंह को उपयुक्त प्रतीत नही हुई और उसने अधोलिखित पक्तिया कह ही दी, जो रंग में भंग की कारण बनी–

कह न सकते यो किसी से, एक ईश्वर के बिना,
अद्वितीय मनुष्य जग मे, कौन जा सकता गिना ?
एक से है एक उत्तम, पुष्प इस संसार का,
पार मिलता है किसे प्रभु-सृष्टि-पारावार का। [1]

राजकवि को पश्चात्ताप हुआ एव वह अपनी आत्म-हत्या करके स्वर्ग का पथिक बन गया। बस अब तो गल बाहो के स्थान पर चचल कृपाण दिखाई देने लगी, चल चितवन मे वाण प्रस्तुत होगये और विवाह का समस्त वातावरण युद्ध के वातावरण में परिवर्तित होगया। इस प्रकार रग में भंग होगया। 'रग में भग' यह एक कहावत है जो किसी शुभ कार्य मे विघ्न हो जाते समय प्रयुक्त होती है। वैवाहिक शहनाई-वादन युद्ध भेरियो में परिवर्तित होगया। यही नही अपितु वर खेतलसिंह ने भी वीर गति प्राप्त की। उसके शौर्य का वर्णन कवि ने प्रस्तुत पक्तियो मे किया है —

अन्त मे सग्राम मे वीरत्व दिखलाकर महा,
वर समेत बरातियो ने वीर-गति पाई वहा। [2]

वह आर्य कन्या जिससे अपने दिवगत पति से बात भी न की जीवित नही रह पाई। कवि कहता है —

बात भी न अब तक जिससे थी हुई अनुराग मे,
यो उसी के जीवित वह जल गई वह आग मे। [3]

वस्तुत. इस स्थान पर काव्य का प्रथम खण्ड परिसमाप्त हो जाता है। इस खण्ड का प्रमुख पात्र किसे समझा जाय ? यह एक प्रश्न है। यह समस्त घटना राजकुमारी के विवाह पर आधारित है। यदि राजकुमारी न होती तो कदाचित काव्य का जन्म भी न हुआ होता। एक भारतीय ललना का उच्चादर्श राजकुमारी के चरित्र में परिलक्षित होता है भारतीय नारी का आदर्श रहा है कि मनसा, वाचा, कर्मणा उसका पति जो एक बार बन गया वही आजन्म के लिये उसका स्वामी बन जाता है। राजकुमारी के ये वचन द्रष्टव्य है .—

---

१ – गुप्तजी–रंग मे भग, पृ० १२।
२ – वही, पृ० १६।
३ – वही, पृ० १६।

किन्तु अब इच्छा नही है, देह लालन की मुझे,
तात, आज्ञा दो, दयाकर, धर्म-पालन की मुझे।'[1]

उसका आदर्श भारतीय नारी सावित्री के इन शब्दो मे देखा जा सकता है :—

"सकृदंशोनिपतति सकृत् कन्या प्रदीयते"

अतः यदि प्रथम खण्ड की नायिका राजकुमारी को मान लिया जावे तो अधिक संगत होगा। काव्य की कथा को अग्रसर करने मे उसका महत्वपूर्ण हाथ है। द्वितीय खण्ड की प्रेरणा भी उसके कारण ही प्राप्त होती है।

द्वितीय खण्ड में गोनोली नरेश लाखा बून्दी का गढ़ तोडने की प्रतिज्ञा करता हैं। उसके क्रोध-शान्त करने के लिये एवं प्रतिज्ञापूर्ति को बून्दी के एक कृत्रिम गढ का निर्माण कराया जाता है किन्तु वीरवर कुम्भ जो पहले ही गोनोली नरेश के यहा रहता था किन्तु बून्दी का रहने वाला था कृत्रिम दुर्ग को भी तोडने नही देता है। वह अपनी मातृ भूमि के स्वाभिमान की रक्षा के लिये अपने प्राणो का बलिदान देता है। बून्दी के कृत्रिम दुर्ग के अवलोकन मात्र से उसके हृदय में देश प्रेम उमडता है और वह कहता है :—

प्राण बेचे हैं तुम्हे, बेचा न मैने मान है,
धर्म के सम्बन्ध मे नृप और रक समान है।
वन्दना उस दुर्ग की, करने लगा अति भाव से,
शीश पर उसने वहा की रज चढाई चाव से।[2]

इस खण्ड का नायक कुम्भ वीर ठहरता है। गुप्तजी की यह उक्ति उसको इस खण्ड का नायक सिद्ध करने को पर्याप्त है :—

उष्ण शोणित धरा से, धरणी वहा की होगई,
कुम्भ के इस कृत्य से कृतकृत्य बून्दी होगई।
इस तरह उस वीर ने प्रस्थान सुरपुर को किया,
राजपूतो की धरा को कीर्ति-धवलित कर दिया।[3]

'रग में भंग' प्रबन्ध काव्य की कथावस्तु राजकुमारी के विवाह से सम्बद्ध है उसी का प्रमुख स्थान है। द्वितीय कथा प्रत्यक्ष रूप से गौण गिनी जा सकती है। अतः राजकुमारी ही प्रस्तुत प्रबन्ध काव्य की नायिका ठहरती है। द्वितीय खण्ड मे कुम्भ प्रमुख है। इस दृष्टिकोण से यदि राजकुमारी को काव्य की नायिका तथा कुम्भ को नायक मान लिया जाय तो सम्भवतः समीचीन ही होगा।

---

१ – गुप्तजी–रंग मे भंग, पृ० १६।
२ – वही, पृ० २५, २८।
३ – वही, पृ० २६।

प्रमुख पात्र अथवा नायक के निर्धारण के लिये हमारे पास निम्नलिखित मापदण्ड हैं —

(१) कथा वस्तु के सम्बन्ध से।

(२) घटना के सम्बन्ध से।

(३) काव्य के नामकरण के सम्बन्ध से।

इन मापदण्डो को ध्यान मे रखकर भी देखा जाय तो ज्ञात होगा कि राजकुमारी नायिका ठहरती है एवं द्वितीय स्थान कुम्भ का है। यदि एक आदर्श नारी है तो दूसरा परम देश भक्त जो "जननी जन्म भूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी" की भावना का पोषक है।

४. जयद्रथ-वध—

कथावस्तु के आधार से—

कथावस्तु की दृष्टि से काव्य पर विचार करने मे यह ज्ञात होता है कि यह एक घटना-प्रधान काव्य है। जयद्रथ बध काव्य का विषय है एवं सारे काव्य की कथा उसी के चारो ओर घूमती हुई परिलक्षित होती है। किन्तु नायक के निर्धारण के लिये यह आवश्यक हो जाता है कि वह काव्य की कथा का नेता हो तथा उसमे प्रमुख स्थान ग्रहण किए हुए हो।

घटना तथा कार्य के सम्बन्ध से—

स्वाभाविक प्रश्न उठता है कि जयद्रथ-वध करने वाला कौन व्यक्ति है ? उत्तर मिलता है अर्जुन। यह बात बडे महत्व की है कि 'जयद्रथ-बध' काव्य वीर तथा करुण प्रधान काव्य है अत वीर रस का नायक अर्जुन सर्वथा उपयुक्त ठहरता है। उसका एक मात्र कारण है कि उसको इकलौते बेटे का शोक है। जिसके पगो में कभी बिवाई नही फटी उसे किसी की पीडा का क्या अनुभव हा सकता है। अर्जुन के हृदय में प्रतिशोध की ज्वाला धधक रही थी जो लोहे को भी भस्म कर सकती थी तो जयद्रथ उसके समक्ष कुछ भी नही था। वह रोता नही है। जहा करुण रस आता है वहा युधिष्ठिर होते हैं जिनका काव्य की प्रमुख घटना से विशेष सम्बन्ध नही है किन्तु जहां आसुओ का बदला तलवार से दिया जाता है वहा हमारे समक्ष अर्जुन होता है। ऐसा ज्ञात होता है मानो युधिष्ठिर के आँसू करवाल हो तथा युधिष्ठिर-हृदय मे प्रतिशोध के लिये प्रवेश कर जाता हो।

डा० कमलाकान्त पाठक ने अपने ग्रन्थ 'मैथिली शरण गुप्त-व्यक्ति और कवि' में तथा डा० उमाकान्त चतुर्वेदी ने अपने शोध प्रबन्ध 'मैथिलीशरण गुप्त-कवि और भारतीय संस्कृति के आख्याता' में अर्जुन को काव्य का नायक माना है।

यह निर्विवाद है कि जयद्रथ-वध नामक काव्य का नायक (प्रमुख पात्र) अर्जुन है। यद्यपि जयद्रथ, अभिमन्यु, द्रोणाचार्य आदि का भी महत्व है किन्तु कथावस्तु के निर्वाह तथा घटना के नायक की दृष्टिकोण से नायक अर्जुन ही ठहरता है। इसका स्पष्ट संकेत काव्य में भी मिल जाता है :—

रहते हुए तुमसा सहायक प्रण हुआ पूरा नही,
इससे मुझे है जान पडता, भाग्य बल ही सब कही।
सन्देश कह दीजो यही, सबसे विशेष विनय-भरा,
खुद ही तुम्हारा जन धनजय धर्म के हित मे मरा।

तुम भी कभी निज प्राण रहते, धर्म को मत छोडिओ,
बैरी न जब तक नष्ट हो मत युद्ध से मुख मोड़िओ।
है इष्ट मुझको भी यही यदि पुण्य मैने हो किये,
तो जन्म पाऊ दूसरा, मैं वैर शोधन के लिये।[1]

यहा यह भ्रम हो सकता हैं कि कृष्ण को नायक क्यो नही माना गया। दिन का अस्त तथा उदय उनके हाथो मे है। किन्तु इसका इतना सा निराकरण पर्याप्त है कि यदि प्रसाद के 'चन्द्रगुप्त' मे चाणक्य का प्राधान्य होने के कारण भी कार्यकर्त्ता की दृष्टि से चन्द्रगुप्त नायक ठहरता है, ठीक उसी प्रकार अर्जुन कार्यकर्त्ता की दृष्टि से काव्य का नायक है, चाहे वह कृष्ण भी उंगलियो पर ही क्यो न खेलता रहा हो।[2]

इन सब तथ्यो से यह स्पष्ट है कि प्रस्तुत काव्य का नायक या प्रमुख पात्र अर्जुन है।

५. शकुन्तला—

कही कही तो कवि अपने काव्य का शीर्षक देकर ही काव्य के नायक अथवा नायिका से अवगत करा देता है। 'शकुन्तला' उन्ही में से एक काव्य है। कथावस्तु के दृष्टिकोण से विचार करने पर ज्ञात होता है कि शकुन्तला के जीवन का चित्रण ही प्रस्तुत काव्य का विषय है और यही कवि का अभिप्रेत है। प्रत्येक घटना का सम्बन्ध शकुन्तला से दृष्टिपथ मे आता है। श्री कमला कान्तजी पाठक के ये विचार द्रष्टव्य हैं—

'अवश्य ही इस काव्य मे प्राचीन भारत की सुसंस्कृत नारी के गौरव कथा को प्राथमिकता दी गई है।"[3]

---

१ – गुप्तजी–जयद्रथ वध, पृ० ८३।

२ – वही, पृ० ८४।

३ – डा० कमला कान्त पाठक, मैथिलीशरण गुप्त-व्यक्ति और काव्य, पृ० २९९।

यहा प्रश्न उठाया जा सकता है कि शकुन्तला को ही नायिका मानकर क्यो छोड दिया जावे दुष्यन्त भी तो काव्य का नायक है, उसे शकुन्तला प्राप्त होती है जो चार प्रकार के फलो मे से ' काम ' के अन्तर्गत आती है। यह सर्वथा मान्य है कि शकुन्तला नामक काव्य में शकुन्तला नायिका तथा दुष्यन्त नायक हैं किन्तु प्राधान्य किसका है इसके आधार पर हमे अपने आलोच्य-पात्र पर दृष्टिपात करना पडेगा। यद्यपि काव्य का श्रीगणेश दुष्यन्तागमन से ही होता हैं किन्तु उसके आधार पर ही तो प्राधान्य का निर्धारण नही हो सकता। इसको जाचने के लिये हमारे पास दो मापदण्ड हैं।

१: यदि दुष्यन्त प्रमुख पात्र होता अर्थात् यदि काव्य नायिका प्रधान न होता तो उसका नाम शकुन्तला न होकर दुष्यन्त के नाम पर होता। किन्तु काव्य शकुन्तला के नाम पर है अत. कृति नायिका प्रधान है।

२. जहाँ गुप्तजी 'यशोधरा' तथा 'साकेत' अथवा 'उर्मिला' काव्यो में हमारे समक्ष यशोधरा तथा उर्मिला को लाये वहा वे हमारे समक्ष शकुन्तला को भी लाये। उर्मिला तथा यशोधरा की उपेक्षा ऐसी है जो साहित्य मे खटकती हैं। उनकी उपेक्षा कवियो ने तो की हैं उनके पतियो ने नही की हैं किन्तु शकुन्तला वह नारी हैं जिसका पति ही उसे नही पहिचानता। इस दृष्टिकोण से शकुन्तला का उपेक्षिता का स्वरूप यशोधरा तथा उर्मिला से कम मार्मिक नही है। अत. प्रस्तुत कृति में 'शकुन्तला' को ही प्रमुख पात्र के रूप में देखा जा सकता हैं। [1]

६. किसान——

प्रस्तुत रचना में गुप्तजी ने किसानो की तत्कालीन अवस्था का चित्रण किया है। कल्लू को किसान-वर्ग का प्रतिनिधि-पात्र मानकर काव्य का प्रणयन किया गया है। कल्लू की कथा मानो समस्त किसान वर्ग की कथा है। कल्लू का देश मे किसान रह कर जीवित रहना कठिन हो जाता है। उसे शिक्षा मिलना तो दूर रहा भर पेट भोजन भी नही मिल पाता है। वह जीवन से तग आकर कहता है —

हा-हा खाना और सर्वदा आसू पीना,
नहीं चाहिए नाथ! हमें अब ऐसा जीना। [2]

नव-विवाहित कल्लू तथा कुलवन्ती के दम्पति का प्रात काल सन्ध्या मे परिवर्तित हो जाता है। कल्लू अपने व्यवसाय मे परिवर्तन करने के उपरान्त कुली बन जाता है

---

१ – विस्तृत विवेचन हेतु देखें–कवि नेवाज कृत वृजभाषा पद्यानुवद्ध सकुन्तला नाटक, सम्पादक— साहित्य शिरोमणि राजेन्द्र शर्मा।

२ – गुप्तजी–किसान, पृ० ५।

और जब वहा भी भरपेट खाना नही मिल पाता तो उसे देश का परित्याग करना पड़ता है। इस प्रकार काव्य की समस्त कथावस्तु कल्लू को केन्द्र मानकर विकसित होती है। कल्लू के चरित्र तथा जीवन घटनाओ के विकास मे कथा का विकास निहित हैं। किन्तु इन सारी आपत्तिया के सहन करते हुए भी कल्लू में ये चारित्रिक गुण है :—

(अ) देशभक्ति— जिस देश मे उसे भूखो रहना पडता था, देश से दूर होने पर वह अपने देश को पुनः आने की आकाक्षा रखता है।

(ब) परिश्रमशीलता— कल्लू की श्रमशीलता न केवल उसके व्यक्तिगत अपितु समस्त वर्ग की श्रमशीलता का द्योतन करती है।

(स) सहानुभूति— उसकी निर्धनता ने उसे सहानुभूति का पाठ पढा दिया है अतः व सहानुभूतिशील भी है।

(द) सहिष्णुता— कल्लू के इस गुण का परिचय तो काव्य के आरम्भ में ही मिल जाता हैं। यथार्थतः यह उसका महान् गुण है।

अतएव उपर्युक्त गुणो को ध्यान में रखते हुए इस आत्मकथात्मक शैली मे लिखित काव्य का प्रमुख-पात्र कल्लू को माना जा सकता हैं।

७. पंचवटी—

प्रस्तुत काव्य मे रामकथा का निर्वाह हुआ है। राम, लक्ष्मण, सीता आदि रामायण के सभी पात्र इस काव्य मे अवतीर्ण होकर आए हैं। यद्यपि इन पात्रो की चारित्रिक विशेषताएं रामायण को जैसी है किन्तु फिर भी पात्रो मे कुछ भगिमाए प्रस्तुत करदी गई हैं। यदि 'मानस' मे राम की प्रमुखता है तो साकेत मे 'उर्मिला' का प्रामुख्य दिखाई देता है और पचवटी मे लक्ष्मण प्रमुख पात्र प्रतीत होते है। इसी कारण से प्रस्तुत रचना गुप्तजी के काव्य विकास में ऐतिहासिक महत्व रखती है। यर्थातत. पचवटी काव्य की कथा लक्ष्मण सूर्पणखा प्रम की कथा है। यह प्रेम पचवटी जैसे रमणीक स्थान पर प्रकट हुआ है। ऐसे प्रसग अधिक आये हैं जो लक्ष्मण को अन्य पात्रो की तुलना मे प्रमुख बना देते हैं। 'मानस' के तथा 'साकेत' के लक्ष्मण क्रोवो अवश्य हैं किन्तु कार्यात्मक रूप मे उन्होने न कभो ऋषी पर पराक्रम प्रदर्शित किया हैं और न परशुराम पर ही व्याघात किया है किन्तु पचवटी का लक्ष्मण अपने क्रोध का शिकार केवल शूर्पणखा को बनाता है। युद्ध मे पराक्रम करना तो क्षत्रियो का धर्म है ही। एक नारी का नासिकोच्छेदन कहा तक सगत है – यह तो एक उलझन का प्रश्न है किन्तु फिर भी अनाधिकार चेष्टा करने वालों के लिये वह एक सन्देश है। सूर्पणखा के हृदय मे हिडिम्बा के जैसा तीव्र प्रेम नही था अपितु वासना की ज्वाला प्रज्वलित थी। उसकी दृष्टि तो उस मधुप के समान थी जो

पुष्प-पुष्प का रस लेता फिरता है और गुलाब की सुगन्धि पर इतना बेतहाशा होकर गिरता है कि कंटकित होकर कभी कभी तो प्राण तक दे जाता है। उसी प्रकार सूर्पणखा की दृष्टि-भ्रमरी लक्ष्मण-गुलाब पर पडी और उसकी सुगन्धि का भारी मूल्य चुकाना पडा। उसकी व्याकुलता तथा काम-वासना से पीडित होने की अवस्था का चित्रण कवि इन शब्दों में करता है—

> थी अत्यन्त अतृप्त वासना, दीर्घ दृगो मे झलक रही,
> कमलो की मकरन्द मधुरिमा मानो छवि से छलक रही।
>
> किन्तु दृष्टि थी जिसे खोजती, आगे उसे पा चुकी थी,
> भूली भटकी मृगी अन्त मे अपने ठौर आ चुकी थी। [1]

यद्यपि मृगी शब्द का प्रयोग करके कवि की शूर्पणखा के प्रति सहानुभूति छलकती है किन्तु लक्ष्मण जैसा यती मर्यादावादी राम के समक्ष उसके प्रणय को स्वीकार कर लेता तो उसके चरित्र पर सदैवके लिये काला पर्दा पड़ जाता। दूसरी बात यह थी कि उसकी तपस्विनी साकेत में बैठी तप कर रही थी, वह अपने पखो को फैलाए अपने वनको गये हुए खग की याद में जल रही थी, अतः उसको धोखा देकर एक तामसिक प्रवृत्ति वाली पिशाचिनी के प्रणय का प्रत्युत्तर देना अन्याय था। तीसरी यह भी बात है कि शूर्पणखा ने हृदय देकर हृदय लेना नही चाहा था। ऐसे अन्य कारण भी हो सकते है जिनके कारण लक्ष्मण द्वारा किया गया कार्य अधिक गर्हित नही कहा जा सकता है।

अतः उक्त काव्य में लक्ष्मण प्रमुख पात्र की कोटी में आते हैं। इन्ही दो पात्रो के अभाव मे पचवटी कार्य कुछ न रह जायेगा, वे दोनो ही पात्र कार्य में अधिक सहयोग प्रदान करते है।

८. शक्ति—

प्रस्तुत लघु काव्य ग्रन्थ में शक्ति के द्वारा महिषासुर का वध दिखलाया गया है। जिससे देव तथा मानव सभी प्रसन्न होते हैं। अत. शक्ति, इस काव्य मे प्रमुख पात्र के रूप मे आती है। यथार्थतः यह एक देवी-पात्र का प्रयोग है। इस कृति के अतिरिक्त अन्य किसी गुप्त–कृत रचना में देवी का प्रयोग नही हो पाया है। महिषासुर के वध के उपरान्त देवी के जयघोष सम्बन्धी ये पक्तिया अत्यन्त प्रमुख हैं –

> जगत्तारिणी की जय-जय, जय गूंज उठा जयनाद,
> भागा दूर-गया दैत्यो मे, सब भय और विषाद्। [2]

---

१ – गुप्तजी–पंचवटी, पृ० २१।

२ – गुप्त जी–शक्ति, पृ० ११।

काव्य का नामकरण भी शक्ति के नाम पर ही किया गया है क्योंकि उसका काव्य मे सर्वोतम स्थान है। शक्ति ही काव्य का प्रमुख-पात्र है।

६. सैरंध्री——

सैरन्ध्री द्रोपदी का दूसरा नाम है। इसमे सैरध्रीके चरित्र-विकास के दृष्टिकोण को लेकर आदर्श-नारी का चित्र प्रस्तुत किया गया है। कवि ने प्रारम्भ मे ही सैरध्री की सुन्दरता का वर्णन प्रस्तुत किया है –

> अति लिपटी भी शैवाल मे कमल कली है सोहती,
> घन-सघन-घटा मे घिरी चन्द्रकला मन मोहती। [1]

कीचक, सैरंध्री की सुन्दरता पर विभुग्ध होकर वासना की अग्नि मे प्रज्वलित हो उठता है किन्तु वह भारतीय नारी अपने पथ से विचलित नही होती है। पतिव्रता स्त्रिया अपने पति के हर्ष के लिये अपने प्राणो का परित्याग कर सकती हैं उनके लिये पति ही सब कुछ होता है। जैसा कि सैरध्री के इन शब्दो से प्रकट होता है —

> मेरे पति हैं पाँच देव, अज्ञात, निवासी,
> तन, मन, धन से सदा उन्ही की हूँ मै दासी। [2]

जब कीचक बलात्कार करने की चेष्टा करता है तो वह अच्युत का स्मरण करती है एवं अश्रुवारि का अर्घ्य प्रस्तुत कर सकट-विमोचनकी प्रार्थना करती है। इस स्थान पर सैरध्री अपने को 'अबला' कहती है किन्तु यह सब विनय प्रकाश के लिये है। सती मे तो वह शक्ति है कि रात से दिन और दिन से रात नही होने देती। वह दुष्ट के लिये रण-चचला बन सकती है। इस प्रकार के व्यभिचारो का विनाश भीम के द्वारा होने को था अत' वह उसको बिना उचित पाठ पढ़ाये अपने पति के पास आजाती है। उसके एक झटके से, पतित कीचक के गिरने का कवि ने वर्णन किया है —

> तब सहसा मु ह के बल वहा मदोन्मत वह गिर पडा,
> मानो झंझा वेग से पतित हुआ पादप पडा। [3]

जब सती की कोई रक्षा करने को प्रस्तुत नही होता तो धर्म उसकी स्वय रक्षा करता है। इस प्रकार सतीत्व का त्राण कर अपने पति भीम के पास आई हुई सैरध्री की अवस्था का चित्रण कवि करता है —

---

१ – गुप्त जी–सैरन्ध्री, पृ० ४।
२ – वही, पृ० ६।
३ – वही, पृ० २३।

होगई अधीर और भी उन्हे देखकर द्रोपदी,
हिमराशि पिघल रवि तेज से बड़ा ले चले ज्यो नदी। [1]

इस प्रकार नारी के आदर्श चरित्र की प्रतिष्ठा की गई है और उसका माध्यम सैरन्ध्री को बनाया गया है। भीम, कीचक का वध करता है। कवि निर्णय (Poetic Justic) के दृष्टिकोण से भीम का चरित्र अत्यन्त उत्कृष्ट है। इस काव्य में उसकी शक्ति 'परेषा पर पीडनाय' के लिये नही है अपितु उसका प्रयोग रक्षा के लिये किया जाता है जिससे भीम को आदर्श पर पहुँचाया जाता है।

अतः सैरन्ध्री तथा भीम इस काव्य के प्रमुख पात्र हैं।

१०. बक-संहार—

बक सहार में भीम के द्वारा बक के वध की कथा है। आतिथि और अतिथेय की कथा पर दृष्टिपात किया गया है। काव्य के प्रारम्भ मे ही गुप्तजी ने लिखा है —

आतिथ्य और अतिथि कथा, तेरी पुरानी प्रथा,
प्राचीन भारत आज भी सुनवीन है। [2]

पाण्डव, ब्राह्मण तथा ब्राह्मणी के यहा ठहरे हुये अपने निर्वासन की अवधि को पूर्ण कर रहे हैं। वे भिक्षान्न से अपनी मा के पेट को भरने के उपरान्त स्वय भोजन करते हैं। भीम जो पराक्रमी होने के साथ साथ अधिक खाने वाला भी था, अधभूखा रहता है। विधि को वह भी स्वीकार नही है।

भिक्षान्न के आते स्वयं, मा को खिला खाते स्वयं
विष-विघ्न भी जाता कहा, बक रूप मे निकला वहा। [3]

ब्राह्मण के घर पर विपत्ति का पहाड टूट पडता है। वह स्वयं बक के लिये अपना जीवन देने को तत्पर होता है क्योकि संसार के सारे विभवों का अनुभव कर चुका है किन्तु ब्राह्मणी अपने सामने पति को इस अवस्था में नही देख सकती है। पुत्री कहती है कि मैं मैं पराई थाती हू मेरे अभाव मे विशेष वेदना नही होगी किन्तु इकलौता पुत्र अपनी बहिन के निधन को सहन नही कर सकता है। इस प्रकार ब्राह्मण का समस्त परिवार शोक से सन्तप्त है। ऐसी परिस्थिति को देखकर कुन्ती से नही रहा जाता है, वह कहती है कि जो राजा अपनी प्रजा की रक्षा न कर सके उसके राज्य का त्यागना ही श्रेयस्कर है। यही नही अपितु कुन्ती की वलिदान की भावना इन पंक्तियो में देखी जाती है—

---

१ – गुप्त जी–सैरन्ध्री, पृ० २७।
२ – गुप्त जी–बक संहार, पृ० ६।
३ – वही, पृ० ६।

बस है तुम्हारे एक सुत, पर, पांच हैं मेरे अयुत,
दूंगी तुम्हे मै एक उनमे से अहो। [1]

किन्तु ब्राह्मण इस प्रस्ताव को सरलता से स्वीकार नही कर लेता है। उसे आत्म-ग्लानि होती है। वह सोचता है कि क्या मैंने तुम्हारे पुत्र की बलि लेने के लिये ही प्रश्रय दिया था किन्तु कुन्ती अपने वचन पर दृढ है। युधिष्ठिर भी एकदम कह उठते हैं कि यह क्या किया ? कुन्ती के प्रति कही गई ये पंक्तियां अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं —

पर हेतु मरने के लिए, निज सुत बिना अक धक किये,
किस भांति भेजेगा तुम्हारा यह हिया ? [2]

अत काव्य मे एक भीम है जो बक का वध करके अपने शौर्य का परिचय देता है और दूसरा प्रमुख नारी पात्र कुन्ती है जो भारतीय करुणामयी नारी की साक्षात् प्रतिमा है। अत प्रस्तुत कृति में भीम तथा कुन्ती को प्रमुख पात्र माना जा सकता है।

११. वन-वैभव—

प्रस्तुत कृति घटना प्रधान है। इसके पूर्वार्द्ध में पांचाली की दीनावस्था के ऊपर पाण्डवो की आक्रोश की भावना का प्रदर्शन है। पाण्डवो के द्वारा कौरवो का त्राण इसका विषय है। आखेट को निसृत उत्तरार्द्ध में कौरव वन मे जाकर सरोवर के किनारे यक्ष के द्वारा पराजित होते हैं। समीप मे ही अपने निर्वासन की अवधि यापन करने वालो पाण्डवो को इसकी सूचना दी जाती है। युधिष्ठिर के हृदय मे भ्रातृ-प्रेम का सचार हो उठता है। इस रचना मे उनमें गान्धीवादी विचारधारा का प्रवेश हो गया है। भीम चाहता है कि अब कौरवो की परिस्थिति से लाभ उठाकर अपना उल्लू सीधा कर लिया जावे किन्तु युधिष्ठिर जैसे आदर्शवादी व्यक्ति के समक्ष ये कल्पनाएं कल्पना ही रह जाती हैं क्योंकि उनका आदर्श चरित्र सारे काव्य मे परिव्याप्त है। सभी उनका आदर करते हैं। वे कहते हैं —

जहां तक है आपस की आच,
वहा तक वे सौ है हम पाच।
किन्तु यदि करे दूसरा जाच,
गिने तो हमे एक सौ पाच।
वत्स अर्जुन सत्वर जाओ,
और तुम उन्हे छुडा लाओ। [3]

१ – गुप्तजी–बक संहार, पृ० २६।
२ – वही, पृ० २८।
३ – गुप्तजी–वन वैभव, पृ० ३३।

काव्य के अन्त में युधिष्ठिर आसू गिराते हैं और कुलव्रत पालन का आदेश देते हैं। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि प्रस्तुत रचना में युधिष्ठिर तथा अर्जुन का प्रामुख्य है। इन दो पात्रो के अभाव में काव्य कहलाने का सौभाग्य प्राप्त नही हो सकता है। यदि युधिष्ठिर आदर्श के प्रतिष्ठापक हैं तो अर्जुन पराक्रमशाली ! जो अपने बडे भाई के आदेशानुसार अपनी इच्छा के विरोध में होते हुए भी कौरवा की निष्कृति कर देते हैं। अतः युधिष्ठिर तथा अर्जुन ये दो प्रस्तुत खण्डकाव्य के प्रमुख-पात्र हैं।

१२. हिडिम्बा--

'पंचवटी' में कवि ने राक्षसी के असफल प्रेम का चित्रिण किया है। जहा शूर्पणखा के स्रष्टा ने हिडिम्बा का वैष्णवी रूप धारण कराके उसे सफल प्रेमिका बनाया है वहा पंचवटी में वासना का पतनशील रूप है। कवि ने अपने मानवता-वादी चिन्तन को नायिका के माध्यम से ही अभिव्यक्त किया है। उदाहरण के लिये ये पंक्तियां ली जा सकती हैं —

आई यातुधान वंश में हिडिम्बा किसी मूल से,
वैसे सुसंस्कार वह रखती है वह मूल से।
स्त्री का गुण रूप मे है और कुल शील मे,
पदमिनी की पकजता डूबे किसी झील मे। [1]

शूर्पणखा लक्ष्मण को भय से जीतना चाहती है जबकि हिडिम्बा अपने प्रेमभरे तर्कों से विजित करती है। जैसा कि अधोलिखित पक्तियो से स्पष्ट है—

होकर मैं राक्षसी भी, अन्त में तो नारी हूँ,
जन्म से मैं जो रहूँ, जात से तुम्हारी हूँ।
पुत्रो के तुम्हारे वह पौत्र काम आवेगा,
और आगे मेरी भावनाओ को बढावेगा। [2]

वह उपालम्भ का आश्रय लेकर भीम पर विजय प्राप्त करती है—

और यदि शर्मिष्ठा तुम्हारी पुरखिन है,
तो तुम्हें हिडिम्बा को निभाना क्या कठिन है। [3]

वह अपना प्रणय केवल भीम तक ही सीमित नही रखती है अपितु अपनी सास कुन्ती के चरणो में गिर जाती हैं और युधिष्टिर से भी विनम्र होकर स्त्रियोचित

---

१ – गुप्त जी–हिडम्बा, पृ० २८।
२ – वही, पृ० ४३।
३ – वही, पृ० ४४।

प्रार्थना करती है । कुन्ती उसे बेटी कह कर सम्बोधित करती है । उसकी तामसिक वृत्तिया समाप्त होगई हैं । भीम की सुरक्षा का भार वह अपने ऊपर ले लेती है । ऐसा ज्ञात होता है मानो उस वातावरण का सृजन गुप्तजी ने केवल हिडिम्बा – भीम-परिणय के लिये किया हो । पाण्डवो के समक्ष कुन्ती के प्रति हिडिम्बा के शब्द इस कथन की पुष्टि करते हैं—

अम्ब ! आगई मैं सब बन्धनो को तोड़ के
जैसे नदी जाय निज जन्म भूमि छोड के ।[1]

इस प्रकार भीम तथा हिडिम्बा का परिणय होता है । वह भीम के साथ जाने को व्याकुल नही है । वह तो दूर रहते हुये भी पातिव्रत धर्म का पालन करने तथा अपने पति का भजन करने के दारुण व्रत को धारण कर लेती है । यह उस नारी के चरित का महान उत्कर्ष है । रचना में युधिष्ठिर, भीम तथा कुन्ती आधुनिक मानवो के प्रतिरूप हैं, उनमें रूढिवादिता का सर्वथा अभाव है । हिडिम्बा काव्य की नायिका है और वही उसकी प्रमुख पात्री है । इस सम्बन्ध में विद्वानो में मतवैभिन्य नही है ।

१३. युद्ध—

इस रचना में युद्ध का प्रसंग ही महत्वपूर्ण है । युद्ध, भगवान तथा भक्त का होता है । एक ओर भीष्म पितामह भयानक युद्ध कर रहे हैं । अर्जुन का रथ भी विदीर्ण हो चुका है । उधर कृष्ण शस्त्र न ग्रहण करने की प्रतिज्ञा कर चुके हैं । संघर्ष होता है, भीष्म तथा अर्जुन की कृष्ण के प्रति भक्ति तथा कृष्ण के प्रण-पालन में । भक्ति के समक्ष प्रण का परिहार हो जाता है । उसका निर्वाह सम्भव नही हो पाता है । कवि ने इन चार पंक्तियो मे ही तत्व को भर दिया हैं—

आयुध न लूंगा, उन्होने यह था कहा,
और भक्त भीष्म ने कहा था—देखलूंगा मै ।
बाध्य वे हुए थे बात रखने को भक्त की ।[2]

इस युद्ध-स्थल मे अनेक वीर काम आए किन्तु अभिमन्यु-वध तो मानों पाण्डवो के हृदय को विदीर्ण कर गया । यही नही अपितु घटोत्कच ने, जो भीम का पुत्र था, युद्ध-स्थल मे कर्ण आदि महारथियो के छक्के छुडा दिये । इसी एक काव्य मे युधिष्ठिर अपने आदर्श से पतित हुए प्रतीत होते हैं क्योकि असत्य की झलक उनकी वाणी मे आ जाती है । यद्यपि यह असत्य-भाषण स्वाभाविक था । वे विशेष रूप से पाप के भागी नहीं

---

१ – गुप्त जी–हिडिम्बा, पृ० ३४ ।
२ – गुप्त जी–युद्ध, पृ० ५ ।

ठहराए जा सकते हैं। युधिष्ठिर कहते हैं—

हा आश्चर्य देव, अश्वत्थामा मृत होगया
वह नर-कुंजर गया है मृत्यु-मुख मे। [1]

युद्ध मे अश्वत्थामा नामक हाथी काम आ गया था किन्तु युधिष्ठिर ने नर-कुंजर दोनो का नाम ले लिया था। अतः उन्हे असत्य बोलने का भागी बनना पडता है। उनकी उक्त वाणी को सुनकर धनजय भी युधिष्ठिर के प्रति ये शब्द कह उठते हैं—

निन्दा की युधिष्ठिर की आप धनंजय ने
हाय आर्य यह क्या किया आज आपने ?
आपके लिये भी क्या राज्य बड़ा सत्य से॥ [2]

युद्ध की पृष्ठभूमि होती है, भौतिकता के प्रति आकर्षण। यद्यपि एक पक्ष राज्य के भोगो के प्रति उदासीन है जबकि द्वितीय पक्ष राज्य-पाठ से इतना सम्पृक्त है कि उससे पृथक होते ही मरण का सा अनुभव करने लगता है। कवि ने चित्रण इन पंक्तियो से किया है—

शोणित के प्यासे हुए आपस मे ऐसे वे,
होते नही जैसे हिंस्र पशु भी अरण्य के॥ [3]

चारित्रिक दृष्टि से युधिष्ठिर का अधिक महत्व है। भीष्म तथा कृष्ण और अर्जुन कार्योत्साह की दृष्टि से प्रमुख है। अत इस काव्य में कृष्ण, भीष्म, अर्जुन तथा युधिष्ठिर प्रमुख पात्र हैं।

१४. विकट-भट—

इस ऐतिहाहिक रचना मे जोधपुर के राजा विजयसिह का सवाई सिंह की वीरता के प्रभाव से स्वभाव परिवर्तन प्रस्तुत किया है। विजयसिह देवीसिंह से पूछता है कि जो व्यक्ति जोधपुर नरेश से शत्रुता करे वह कहां त्राण पा सकता है? देवीसिंह पर्याप्त समय तक चुप रहे किन्तु राजा के द्वारा पुनः पुनः बाध्य किये जाने पर यह कह दिया—

जोधपुर की तो फिर बात ही क्या, वह तो,
रहता है मेरी कटारी की पर्तली मे ही,
मैं यो नवकोटी मारवाड़ को उलट दूं [4]

---

१ – गुप्त जी–युद्ध, पृ० २२।
२ – वही, पृ० २३।
३ – वही, पृ० ५१।
४ – गुप्त जी–विकट भट, पृ० १।

इतना मुह तोड उत्तर देने पर विजयसिंह के द्वारा बन्दी बनाया हुआ देवीसिंह दीवाल से मस्तक टकरा जाने के कारण स्वर्ग का पथिक बन जाता है। ऐसा ही प्रत्युत्तर देने पर, विजयसिंह अपने एक राजपुरुष जैतसिंह को मृत्यु के घाट उतार देता है। देवीसिंह का पुत्र सबलसिंह पिता की मृत्यु का प्रतिशोध लेते लेते संसार से चल बसा और अपनी पत्नी तथा इकलौते बेटे सवाई सिंह को छोड जाता है और यह सवाई सिंह ही गुप्तजी का विकट भट है। इस विकट-भट को अपनी मा की शिक्षा मिलती है वह कहती है—

> तुझको भी प्राण-हीन देख सकती हूँ मैं,
> किन्तु मान-हीन देखा जायगा न मुझसे।
> कहना वही जो कहा तेरे पिता-मह ने,
> भूल मत जाना जिस बात पर वे मरे।[1]

ऐसा कह कर मा मरणासन्न होती है किन्तु सवाई उससे प्रार्थना करता है कि वह अपने पुत्र के कृत्य को बिना देखे संसार से प्रयाण न करे। राजा विजयसिंह के बुलाए जाने पर वह वीर निर्भय सिंह की भाति जाता है—

> निर्भय मृगेन्द्र नया करता प्रवेश है,
> बन मे ज्यो डाले बिना दृष्टि किसी ओर के।[2]

विजयसिंह के द्वारा पूछे जाने पर वह वीर वही उत्तर देता है जो उसके पूर्वज देवीसिंह ने दिया था। वह प्रत्यक्ष कह देता है कि यदि मेरे पूर्वजो की कर्तली मे जोधपुर न होता तो बिना उनकी सहायता के आप उसे कैसे पा सकते थे। इस प्रकार अपने पूर्वजो की आन का पूर्ण निर्वाह करने वाले इस वीर की वीरता ने विजयसिंह को अत्यधिक प्रभावित किया। वे एक दम उसका आलिंगन कर लेते हैं।

> सिंहासन छोड उठे भूपति तुरन्त ही
> छाती से लगा के उस क्षत्रिय कुमार को।
> चारण से बोले यो कि, बारहटजी सत्य हो,
> मैंने बुरा काम किया, भूल हुई मुझसे।
>
> किन्तु देवीसिंह और जैतसिंह दोनो ही,
> मरके भी जीवित हैं, देखो इस बच्चे को।
> और आशीर्वाद दो कि यह सुख से जिये,
> मै भी यही आशीर्वाद आज इसे देता हूँ।[3]

---

१ – गुप्तजी–विकट भट, पृ०३९।

२ – वही, पृ० १४।

३ – वही।

इस प्रकार वीर सवाई सिंह विजयपालसिंह की प्रवृति बदल देता है। इस रचना में उसी का स्थान महत्वपूर्ण है। उसके अभाव मे कोई विकट-भट नही रहता है। भट तो संसार मे आते हैं और चले जाते है यथा देवीसिंह, जैतसिंह और सबलसिंह किन्तु महाभट तो शरीर पर विजय प्राप्त न कर हृदय पर विजय प्राप्त करता है, जो सबसे महान् विजय है। अतः प्रस्तुत रचना मे सवाई सिंह ही प्रमुख पात्र है।

१५. गुरुकुल—

गुप्तजी ने इस कृति का प्रतिपादन ऐक्य भावना के प्रोत्साहन तथा मतभेदो के निराकरण को ध्यान में रख कर किया है। गुरुकुल अरब जातीय साम्प्रदायिकता के कारण यातनाए सह रहा था। अत: मुसलमान तथा हिन्दू के भेद भाव को मिटाकर मानवता का प्रतिपादन ही कवि का लक्ष्य प्रतीत होता है। जैसा कि इन पक्तियो से देखा जा सकता है—

हिन्दू हो या मुसलमान, नीच रहेगा फिर भी नीच,
मनुष्यत्व सबके ऊपर है, मान्य मही मण्डल के बीच।[१]

यद्यपि कवि ने गुरु नानक, अगद, अमरसिंह, रामदास, अर्जुन, हरिगोविन्द, हरिराय, तेगबहादुर, गोविन्दसिंह तथा बन्दा वैरागी एवं जोरावर फतहसिंह आदि पात्रो के चरित्र पर पकाश डाला है किन्तु उनमे गुरु नानक, गुरु गोविन्दसिंह, तेगबहादुर, तथा वन्दा वैरागी, प्रमुख हैं। इन पात्रो की साहित्यिक पृष्ठभूमि के साथ साथ ऐतिहासिक पृष्ठभूमि भी वडी पुष्ट है। गुरु गोविन्दसिंह तथा वन्दा वैरागी के विषय मे लगभग आधी रचना छप गई है। कालिदास के रघुवश के प्रमुख पात्रो की भाति 'गुरुकुल' काव्य के सभी पात्र प्रमुख हैं क्योकि उनकी सबकी प्रवृतिया प्राय: एक सी पाई जाती हैं। उनमें धार्मिकता अधिक पाई जाती है। गुरु नानक ने यह उपदेश दिया है कि हम सब उसी एक परम पिता के पुत्र है, इसलिये सौख्य-बर्द्धन के लिये घृणा के स्थान पर प्रेम की भावना होनी चाहिए। कवि ने उनके भावो को इस प्रकार अभिव्यक्त किया है—

परम पिता के पुत्र सभी सम, कोई नही घृणा के योग्य,
भ्रातृ-भाव पूर्वक रहकर सब, पाओ सौख्य शान्ति आरोग्य।[२]

इस प्रकार के उपदेशो का देने वाला स० १५२६ वि० कार्तिक कृष्ण पक्ष मे अवतरित गुरु अपना शोणित-नीर बहाकर स्वर्ग के पथिक बन गये। यहा यह उल्लेखनीय हो जाता है कि गुरु नानक के जन्म-तिथि के अतिरिक्त अन्यत्र काव्य में तिथि या सवत

१ – गुप्तजी–गुरुकुल, पृ० ३१।
२ – वही, पृ० ४३।

देने का प्रयत्न नही किया गया है। अत. प्रस्तुत कृति के आधार पर इन गुरुओ के जन्म तथा अवसान के समय को नही आँका जा सकता है। गुरु अगद, अमरदास और अर्जुन के चरित्र वर्णन में कवि की वृत्ति अधिक नही रमी है। गुरु हरिगोविन्द का महत्व इस-लिए बढ जाता है कि उन्होने राज्य-निर्वासन के दण्ड को सहर्ष स्वीकार कर लिया जैसा कि अधोलिखित पक्तियो से देखा जा सकता है :-

दण्ड सुनाया गया उन्हे तब, देश निकाला कारागार-
बिना विरोध उन्होंने जिसको किया पिता के सम स्वीकार। [1]

तत्पश्चात् गुरु हरराय तथा हरिकृष्ण का चलता सा वर्णन करने के उपरान्त कवि ने गुरु तेगबहादुर के वर्णन मे अधिक रूचि ली है। इनके समय औरगजेब हिन्दूकुल का विध्वन्स किये दे रहा था किन्तु शिवाजी जैसे देशभक्तो ने उसके छक्के छुडा दिये। गुरु तेग बहादुर ने भी उससे टक्कर ली। तत्कालीन यवनो के नृशस अत्याचारो की झलक इन पक्तियो मे देखी जा सकती है।

करो मुसलमानी उनकी जो, बेचारे बच्चे अनजान,
चाहे मेरा गला काटलो, मै, सदैव हिन्दू सन्तान। [2]

गुरु तेग बहादुर ने "नैन छिन्दन्ति शस्त्राणि" तथा "वासासि जीर्णानि यथा विहाय" की भावना इन पक्तियो मे अभिव्यक्त करके औरगजेब को सजग करने का प्रयत्न किया—

क्या यह आत्मा मर सकता है ? जो सकता है कभी शरीर ? [3]

अन्त मे गुरु गोविन्द सिंह का वर्णन प्रस्तुत किया गया है। इनको न केवल स्वय यातनाए झेलनी पड़ी अपितु अपने दो बच्चो को भी अपनी स्वतन्त्रता की बलिवेदी पर चढ़ा दिया। इन जीवित शिशुओ को दीवाल मे चिनवाते समय की यह अवस्था कितनी मार्मिक है-

अचल खड़े थे दोनो बच्चे, बने आप निज विजय स्तम्भ,
चारो ओर अन्त मे उनके, हुई चिनाई ही आरम्भ। [4]

इसके पश्चात् बन्दा वैरागी का वर्णन आता हैं, जिसने अरब जाती से हिन्दुत्व की लाज रखी। अतः प्रस्तुत रचना मे गुरु नानक, हरिगोविन्द तेगबहागुर, गोविन्द सिंह उनके पुत्र जोरावर फतहसिह तथा बन्दा वैरागी, प्रमुख पात्र के रूप मे आते हैं।

---

१ – गुप्त जी–गुरुकुल, पृ० ७१।
२ – वही,– पृ० १०८।
३ – वही, पृ० २५२।
४ – वही, पृ० २०१।

१६. यशोधरा—

गुप्तजी की वैष्णव भावना ने तुलसी दल लेकर यशोधरा का नैवेद्य बुद्ध देव के सम्मुख रखा है। [१] नारी सम्मान का आधुनिक भाव प्रस्तुत रचना का मेरुदण्ड है। "यशोधरा" काव्य का कथासूत्र सुप्रसिद्ध है परन्तु स्वय यशोधरा कवि कल्पना की सृष्टि है। डा० कमला कान्त पाठक ने यशोधरा को ही काव्य की प्रधान पात्री माना है—

"यशोधरा की चरित्र-सृष्टि आधुनिक युग की नारी भावना के अनुसार की गई है तथा उसके द्वारा नारी के सामान्य जीवन का ही नही बल्कि उसके उदात्त चारित्र्य का सौन्दर्य प्रकट किया गया है। वही इस काव्य का प्रधान पात्री है।" [२]

उसमें गोपा का ही प्राधान्य है क्योंकि शुद्धोधन स्वयं कह देते हैं कि गोपा बिना गौतम उन्हे ग्राह्य नही हैं। कवि की दृष्टि मे राहुल जननी या गोपा का अधिक महत्व है–

"भगवान बुद्ध और उनके अमृत तत्व की चर्चा तो दूर की बात है, राहुल-जननी के दो चार आसू ही तुम्हे इसमे मिल जाएं तो बहुत समझना। और उनका श्रेय भी साकेत की उर्मिला देवी को ही है, जिन्होने कृपा पूर्वक कपिल वस्तु के राजोपवन की ओर मुझे सँकेत किया है" [३]

इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि गुप्तजी भगवान बुद्ध के आदर्श और राहुल जननी यशोधरा के उपेक्षित हृदय को पाठको के समक्ष लाना चाहते हैं।

जहा तक भगवान् बुद्ध की अमरता के विवेचन का प्रश्न है, उसके प्रति कौतुक गौतम के द्वारा इन पंक्तियो से प्रकट है –

घूम रहा यह कैसा चक्र
वह नवनीत कहा जाता है,
रह जाता है, तक्र [४]

इस व्याकुलता का परिणाम यह होता है कि गौतम घर से क्षण भगुर भव को प्रणाम करके निकल पडते हैं। उन्हें यह देखकर कि जरा सब के ऊपर आती हैं, मेरी

---

१ – गुप्त जी–यशोधरा, पृ० ३।
२ – डॉ० कमलाकान्त पाठक, मैथिलीशरण गुप्त, व्यक्ति और कवि, पृ० ३२२।
३ – गुप्त जी–यशोधरा की भूमिका, पृ० ३।
४ – गुप्त जी–यशोधरा, पृ० १२।

यशोधरा भी वैसी ही वृद्धा हो जायगी जैसी अन्य वृद्धाएँ। उससे बचने के उपक्रम के लिये कटिबद्ध हो जाना पडता है—

हे राम ! तुम्हारा वश-जात,
सिद्धार्थ तुम्हारी भांति तात,
घर छोड चला यह आज रात,
आशीष उसे दो लो प्रणाम
ओ क्षणभंगुर भव राम राम ।।[1]

इसके पश्चात् यशोधरा के आसू वहाने की बारी आती है। साकेत की उर्मिला को तो चित्रकूट मे सौमित्र के दर्शन हो गये थे। उसने अपने आसुओ की सार्थकता का लाभ उठाया जैसा कि गुप्तजी ने वर्णन किया है—

गिर पडे दौड सौमित्र प्रिया-पद-तल मे,
वह भीग उठी प्रिय-चरण भरे दृग जल मे।[2]

किन्तु यशोधरा के साथ दो विडम्बनाए हैं, एक तो गमनोन्मुख पति से उर्मिला की भांति अभ्यर्थन करना तो दूर रहा दर्शन लाभ भी न कर सकी, दूसरे उसको वियोग की लम्बी अवधि के बीच मे भी गौतम के दर्शन लाभ न हो सके। चाहे कतिपय विद्वान् इसे गौतम की दुर्बलता मानते रहे किन्तु यशोधरा के लिए तो वह विडम्बना ही है। राहुल-जननी के पयोधरो से दुग्ध की धारा प्रस्रवित हुई, जिससे राहुल पला एव साथ ही साथ नेत्रो से आसू निकले, जिनसे गौतम के ज्ञान के मार्ग की धूलि शान्त हो गई। उनकी दृष्टि अभीष्ट फल को पकड लाई। इसीलिए गुप्त जी ने दूध तथा पानी से युक्त हाड मास की प्रतिमा को नारी कह दिया।

गोपा के आसू सूर की व्रज बनिताओ जैसे नही हैं जो किसी कार्य के लिये प्रेरित ही नही करते हैं। वह न केवल अश्रु बहाना जानती है अपितु वीर क्षत्राणी के गुण भी उसमे हैं। उसमे युद्ध करने की भी सामर्थ्य है—

सिंहनी सी कानन मे योगिनी सी शैलो मे,
शफरी सी जल मे, विहंग सी व्योम मे।
जाती तभी ओर उन्हे खोज कर लाती मैं।[3]

१ – गुप्तजी–यशोधरा, पृ० २२।
२ – गुप्तजी–'साकेत' अष्टम सर्ग, पृ० २४६।
३ – गुप्तजी–यशोधरा, पृ० ११६।

वह अपने बनमाली को बुलाती है। उसकी वह कातर पुकार घनानन्द की नायिका की पुकार से भी अधिक व्याकुलता लिये हुये है—

ओ मेरे बनमाली,
ढलक न जाय अर्ध्य आखो का,
गिर न जाय यह थाली।
उड न जाय पछी पंखो का,
आओ हे गुण शाली।
ओ मेरे बन माली। [1]

अत यशोधरा ही प्रस्तुत काव्य की प्रधान पात्री है। उसके आसुओ के प्रवाह के लिए ही काव्य की सृष्टि की गई है।

१७. सिद्धराज—

यह एक चरित्र-प्रधान वर्णनात्मक खण्डकाव्य है। काव्य की समस्त कथा वस्तु सिद्धराज जयसिह को लक्ष्य मे रख कर निर्मित हुई है। जैसा कि पहले कह दिया गया है कि राजा जयसिह १२ वी शताब्दी में पाटन पर राज्य करता था। सिद्धराज उसकी सम्बोध्य उपाधि है। सारी रचना ५ सर्गों मे विभक्त है। जयसिंह का व्यक्तित्व सारे सर्गों मे परिव्याप्त है। प्रथम सर्ग मे उसका मातृ-भक्ति का स्वरूप प्रकट होता है क्योकि मा की आज्ञानुसार अपने कोष की अभिवृद्धि करने वाले कर-पत्र को फाड कर टुकडे-टुकडे करके मा के चरणो मे अर्पित कर देता है। महादेव के दर्शनो के लिये मन्दिर सब को खुला रहता है। द्वितीय सर्ग मे वह नरवर्मा तथा यशोवर्मा से युद्ध करता है तथा विजय प्रा त कर अवन्तिका का शासक वनता है। तृतीय सर्ग मे उसके चरित्र का अध. पतन प्रदर्शित किया गया है। सिन्धुल नरेश की पुत्री रानकदे के, जो पहले से ही खगार को पति मान चुकी थी, सतीत्व पर हाथ डालने की अनाधिकार चेष्टा करता है। यही नही, वह इस सर्ग मे नृसश कस वन जाता है और " साप के सपेलुए भी छोडे नही जाते हैं " ऐसा कह कर रानकदे के दो दुग्ध-पोष्य शिशुओ की निर्मम हत्या कर देता है। चतुर्थ सर्ग मे, वह कुकृत्य के प्रति पश्चात्ताप करता है। उसे खगार की मूर्ति दिखाई देती है। सिद्धराज की ऐसी अवस्था के समय कवि कहता है—

भूल इस भव में मनुष्य से ही होती है,
अन्त मे सुधारता है उसको मनुष्य ही।
किन्तु, वह चूक हाय, जिसके सुधार का

---

१ – गुप्त जी–यशोधरा, पृ० ४४।

रहता उपाय नही, हूक बन जाती है।
और जन–जीवन बिगड़ जैसे जाता है। [1]

इस सर्ग में उसकी प्रवृत्ति मे सुधार आता है और वह अपनी मा मीनलदे के आदेशानुसार सपादलक्ष अर्णोराज को बन्दी बनाकर लाता है तथा अन्त मे उसे अपना जामाता भी बना लेता है। अपनी पुत्री काचनदे को आर्णोराज के साथ परिणिता देख कर उसकी आत्मा सुखानुभव करती है। इस प्रकार सिद्धराज का व्यक्तित्व सारे काव्य मे व्याप्त है।

अतएव देशभक्त, मातृभक्त, बहादुर आदि होने के कारण जयसिंह प्रस्तुत रचना का नायक है। वह मध्यकालीन वीरो की झलक दिखाने वाला है। सिद्धराज जयसिह के साथ साथ जगद्देव को भी नही भुलाया जा सकता है। देशभक्ति, वीरता, परोपकार तथा त्याग आदि गुणो के कारण जगद्देव भी इस काव्य का प्रमुख–पात्र प्रतीत होता है। तृतीय सर्ग मे रानकदे के सतीत्व की रक्षा करते हुए जगद्देव के सामने, सिद्धराज का चरित्र फीका पड जाता है। वह जगद्देव .से आख तक नही मिला पाता है। यदि जगद्देव इस काव्य मे इस स्थल पर न होता तो सिद्धराज मानव से दानव बन जाता। इस दृष्टि से जगद्देव भी उपेक्ष्य नही है। अतः प्रस्तुत रचना मे जगद्देव तथा सिद्धराज दोनो को प्रमुख पात्र माना जा सकता है।

१८. नहुष––

प्रस्तुत काव्य मे मानवोचित दुर्बलताओ तथा सफलताओ पर प्रकाश डाला गया है। कही कही तो गुप्तजी ने काव्य के नामकरण से ही नायक (प्रमुख पात्र) का सकेत दे दिया है। नहुष का चरित्र–चित्रण ही कवि का अभिप्रेत है और कवि को लक्ष्य सिद्धि मे निश्चित रूप से सफलता मिली है। नहुष पराक्रमी तथा पुण्यात्मा राजा है। इन्द्र के आसन के योग्य उसके अतिरिक्त अन्य कोई राजा नही है। इन्द्र को वृत्रासुर को मारने से ब्रह्म–हत्या लग जाती है अत. उसे उसके अनुताप के लिये स्वर्ग से पतित–होना पड़ता है और नहुष को इन्द्र के आसन पर विठाया जाता है। इन्द्र के आसन के प्राप्त होते ही नहुष मदान्ध हो जाता है वह शची (इन्द्र–पत्नी) को भी प्राप्त करने का प्रयास करता है। अत्यन्त विलासी हो जाता है। अन्त मे "अति सर्वत्र वर्जयेत्" उक्ति चरितार्थ होती है। और ऋषियो द्वारा अभिशप्त होकर पुनः पतन के गर्त मे गिरता है। इस प्रकार यह प्रदर्शित किया गया है कि मानव अपने परिश्रम से प्रगतिशील होकर उच्च पद प्राप्त कर लेता है किन्तु अनाधिकार चेष्टा तथा :अभिमान उसे पुन. भ्रष्ट कर देते हैं।

---

१ – गुप्त जी–सिद्धराज, पृ० ८४।

यह उत्थान तथा परिवर्तन से आन्दोलित तथा परिवर्तनशील जीवन प्राप्त करने का सौभाग्य केवल मनुष्य को ही प्राप्त है। मानवीय जीवन, सुख–दुख, जरा–यौवन, आदि से पर्याकुल होता है। इनसे जीवन का प्रवाह अवरुद्ध नही होता। देवो का जीवन अपनी एकरूपता के कारण जीवन की आस्वाद्यता खो देता है। उत्थान, पतन, सफलता और विफलताओ के सघर्ष के मध्य ही तो जीवन पनपता है। इस सम्बन्ध मे गुप्तजी के ये विचार प्रेक्षणीय हैं—

" यूरोप के महाकाव्य मिल्टन के Paradise Lost " का नाम सुना था। कहते हैं कि उसमें स्वर्ग से पतन होने की बात कही गई है। उस स्वर्ग भ्रष्ट रचना मे जो सन्देश दिया गया हैं, उसे जानने का सौभाग्य तो नही हुआ, परन्तु व्यासदेव के वर्णित इस आख्यान मे स्पष्ट दिखाई दिया कि मनुष्य बार बार ऊचे उठने का प्रयत्न करता है और और मानवीय दुर्बलताए बार बार उसे नीचे ले आती हैं "। [1]

गुप्तजी की उपर्युक्त पंक्तियो से स्पष्ट हो जाता है कि वे नहुष के माध्यम से मानव के उत्थान तथा पतन के ऊपर प्रकाश डालना चाहते हैं। नहुष अपने कृतित्व से इन्द्र की पदवी को प्राप्त करता है किन्तु अपनी दुर्बलताओ के कारण उसका पतन भी हो होता है। अतएव " नहुष " रचना का प्रमुख पात्र नहुष को ही मान सकते हैं।

१६. अर्जन और विसर्जन—

प्रस्तुत रचना को दो खण्ड काव्यो का संग्रह माना जाता है प्रथम खण्ड में प्रमुख रूप से हउडोसिया तथा जोनस की कथा मिलती है। अरब जाति के युद्ध में दमिश्च को पराजय का मुंह देखना पडता है किन्तु अरब सेना का सेनापति खलिद, उन व्यक्तियो को दमिश्च खाली करने की आज्ञा दे देता है, जो मुसलमानी राज्य मे रहना पसन्द नही करते हैं। इउडोसिया सर्वप्रथम दमिश्च छोडने को तत्पर हो जाती है। उसमे मातृभूमि के प्रति अधिक प्रेम है। इसके साथ साथ वह वीर भी है। ओनस उसको प्यार करता है किन्तु अब वह पराजित होकर तथा इउडोसिया के प्राप्त करने की शर्त रख कर मुसलमान धर्म को स्वीकार कर लेता है तो इउडोसिया उसे उपालम्भ देती है और घृणा करने लगती है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि इउडोसिया में धार्मिक भावना प्रवल है जिसमें भीरू तथा देश–द्रोहियो को कोई स्थान नही है। जोनस का प्रेम वासनामय है। जब उसे ज्ञात होता है कि अरब–जाति पुन. युद्ध का उपक्रम कर रही है वह युद्ध करने को उद्यत हो जाती है और उसी समय ओनस उसे प्राप्त करने का प्रयत्न करता है। वह अपनी तलवार हाथ में लेकर जोनस से कहती है—

---

१ – गुप्त जी–'नहुष' निवेदन।

कैसे करूं ? अर्पित है देह लो, यही
आओ वीर, पुरी करो तुम निज वासना ।[1]

उपर्युक्त पक्तियो के कहने के साथ ही साथ वह आत्म-हत्या कर लेती है। इसमे इउडोसिया का अत्यन्त श्रेष्ठ चरित्र प्रस्तुत किया गया है। उसमे स्वाभिमान, देश-प्रेम, वीरता, साहस आदि गुणो का सामजस्य है। अतएव इस प्रथम खण्ड में इउडोसिया तथा जोनस को प्रमुख पात्र मान सकते हैं। द्वितीय खण्ड विसर्जन है जिसमें मूर जनो की रानी काहिना का प्रभुत्व परिव्याप्त है। वह सच्चे अर्थ में रानी है। उसकी सेना अरब जाति को पराजित कर देती है। वह अपने दूरदर्शिता के गुण से अनुमान लगा लेती है कि अरब जाति सरलता से पीछा नही छोड देगी अतएव वह अपने देश-वासियो को आज्ञा देती है कि देश का समस्त धन पृथ्वी के भीतर गाड दिया जाय जिससे अरब जाति के आक्रान्ता कुछ प्राप्त न कर सकें। वह अरब-जाति के पराधीन होना नहीं चाहती है। वह अपनी प्रजा से यह कहती है—

तपस्वियो मे रहे यहा हम, लेकर एक मुक्ति की चाह,
मागे बिना भूमि जो कुछ दे, करे उसी पर निज निर्वाह।
यह मत समझो छोड रहे हो यों ही अपना सब कुछ भाग,
वहा सौ गुना सग्रह होगा, यहा करोगे जो तुम लाभ।[2]

त्यागशील तथा देशभक्ति से ओत-प्रोत होने के कारण इस खण्ड की काहिना ही प्रमुख नारी पात्र हैं। इस प्रकार "अर्जन और विसर्जन" काव्य मे इउडोसिया, जोनस और काहिना प्रमुख पात्र हैं।

२०. काबा और कर्बला--

"अर्जन और विसर्जन" की भाति यह रचना भी दो खण्ड काव्यो का सग्रह है। "काबा" मे मुहम्मद शाह तथा कर्बला मे उनके नाती इमाम हुसैन का प्राधान्य है। मुहम्मदशाह को काबा मे अपने सिद्धान्तो तथा धर्म पालन तथा प्रचार के व्यामोह में प्राण विसर्जन करना पडा। उधर इमाम हुसैन कर्बला मे उसी अवस्था को प्राप्त हुआ। ये दोनो ही धार्मिक प्रवृत्ति वाले पात्र हैं अतएव "काबा और कर्बला" के प्रमुख-पात्र बन पाए हैं। इस कृति मे निर्विवाद रूप से मोहम्मद शाह तथा इमाम हुसैन प्रमुख पात्र हैं।

---

१ – गुप्त जी-अर्जन और विसर्जन, पृ० १८।
२ – वही, पृ० २८–२९।

२१. गुरु तेग बहादुर—

जैसा कि पहले बतलाया जा चुका है कि गुरु तेग बहादुर सिक्ख-कुल के सप्तम गुरु थे। उनका वर्णन " गुरुकुल " काव्य मे आया है। ऐसा ज्ञात होता है कि जयभारत की भाति "गुरुकुल" मे भी सम्मिश्रण है। इस रचना को ही थोडी सूक्ष्म करके ' गुरुकुल" के गुरु " तेग बहादुर " नामक शीर्षक के अन्तर्गत दे दिया गया है। इस कृति मे गुरु तेग बहादुर ही अपने व्यक्तित्व तथा कृतित्व के आधार पर प्रमुख पात्र बन बैठे हैं जिसकी पुष्टि प्रबन्ध के नामकरण से भी होती है।

२२. अजित—

प्रस्तुत रचना १५ सर्गों मे विभक्त है। प्रत्येक सर्ग में अजित के चरित्र पर दृष्टिपात किया गया है। यह गुप्तजी की नवीन रचनाओ मे से एक रचना है। इसमे सामयिक समाज का सुन्दर चित्रण किया गया है। प्रथम सर्ग मे अजित स्वच्छन्द व्यक्ति है, दूसरे सर्ग मे उसे दरोगा पकड के ले जाता है, उस समय पुलिस की तथा कारावास के वातावरण की आलोचना प्रस्तुत की है वह न केवल उस समय के लिए है अपितु वर्तमान काल मे भी शत प्रतिशत सही उतरती है। कवि ने प्रजातन्त्र पर गहरा व्यग प्रस्तुत किया है। काव्य के पाचवे, छठे, सातवें सर्ग मे अजित के अन्य कारावासियो का परिचय प्राप्त होता है। वार्तालाप भी होता है एव ज्ञात होता है कि उनमे से अधिकाश निरपराध व्यक्ति पुलिस के आवर्त मे फंस गये हैं। कारावास के जीवन के उपरान्त अजित अपनी पत्नी को घर पर न पाकर डाकू बन जाता है। इस प्रकार अजित की प्रवृत्ति के परिवर्तन मे समाज तथा सरकार का बहुत बडा हाथ रहता है। अन्त मे चतरा चमार के द्वारा निर्दिष्ट अपने पिता के उपदेशो पर चलने वाला अजित पक्का गान्धीवादी बन जाता है। इसमे विनोवा भावे के प्रभाव की झलक आती है। अजित का डाकू से गान्धीवादी विचारधाराओ का बनना इसी बात की घोषणा करता है कि सम्भवत: अजित के स्रष्टा पर विनोवा का प्रभाव है।

अजित काल्पनिक पात्र है और काव्य का नायक प्रतीत होता है। इसकी पुष्टि गुप्तजी के इन वाक्यो से हो जाती है—

"इधर मैंने जब इसे पूरा कर लिया तब इसके प्रमुख पात्र के नाम पर ही इसका नाम-सस्कार कर देना उचित जान पड़ा।" [1]

अत स्पष्ट है कि रचना का नाम अजित इसलिए रखा गया क्योकि अजित उसका प्रमुख पात्र है।

---

१ – गुप्त जी–अजित की भूमिका।

२३. विष्णुप्रिया—

यह गुप्तजी का नवीनतम खण्ड काव्य है। जिस प्रकार कवि ने उपेक्षित उर्मिला, यशोधरा, केकयी के चरित्र की प्रतिष्ठापना की है उसी प्रकार विष्णुप्रिया के साथ साहित्यिक न्याय प्रस्तुत किया है। यदि इसी दृष्टि से देखा जाय तो विष्णु-प्रिया खण्डकाव्य की नायिका विष्णुप्रिया ही होनी चाहिए क्योंकि " यशोधरा " मे यशोधरा तथा साकेत में " उर्मिला " तथा केकयी का चारित्रिक दृष्टि से प्रमुख स्थान है। विष्णु-प्रिया भी उक्त नारियो से कम महत्वशालिनी नही है। वह अपने पति के आगमन तक कठिन परिश्रम करके अपनी सास और स्वयं का भरण-पोषण करती है। विष्णुप्रिया ने न केवल भारतीय नारी का चारित्रिक आदर्श प्रदर्शित किया है अपितु भक्ति भावना को भी अपनाया है। इस प्रकार उसकी परिस्थितिया उसे उर्मिला, यशोधरा आदि से पृथक कर देती हैं। विष्णुप्रिया शारीरिक तथा मानसिक दोनो प्रकार की वेदना के पाटो के मध्य पिसती दिखाई देती है। समस्त रचना मे उसका प्रभाव परिव्याप्त है। तपस्या के उपरान्त लौटे हुए चैतन्य विष्णु-प्रिया से क्षमा याचना करते हैं। विष्णुप्रिया मौन रहकर उन्हे क्षमा देती है। इसी नारी के आदर्श की स्थापना के लिए कवि ने विष्णुप्रिया को चुना। गुप्तजी ने इस रचना मे भी साकेत की भाति चैतन्य के प्रति अपनी तथा विष्णुप्रिया की भक्ति प्रदर्शित की है तथा इसके साथ साथ विष्णुप्रिया के आदर्श चरित्र प्रस्तुत करने की प्रवृत्ति भी कार्य कर रही है। पति के प्रति पत्नी की भक्ति होने के कारण रस में अन्तर नही आ पाता जबकि साकेत मे राम सीता के पति है तो उर्मिला लक्ष्मण की पत्नि है। इसीलिये वहा सघर्ष को स्थान मिल गया है। अतएव गुप्तजी की इस कृति में विष्णुप्रिया तथा चैतन्य दोनो को ही प्रमुख पात्र माना जा सकता।

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है कि गुप्तजी के प्रबन्ध काव्यो के प्रमुख पात्रो को उल्लिखित करने के उपरान्त उन्हे तीन पौराणिक, ऐतिहासिक और काल्पनिक भागो मे बाट सकते हैं।

पौराणिक-पात्र—

'साकेत' के राम, उर्मिला, लक्ष्मण, केकैयी, 'जयभारत' के युधिष्ठिर, 'जयद्रथ वध' के अर्जुन, 'शकुन्तला' की शकुन्तला; 'पञ्चवटी' के लक्ष्मण, 'सैरन्ध्री' की सैरन्ध्री; 'बन वैभव' के युधिष्ठिर, 'बक-सहार' की कुन्ती तथा भीम, 'शक्ति' की शक्ति, 'युद्ध' के भीष्म पितामह, 'नहुप' के नहुष आदि पात्रो के नाम पौराणिक पात्रो मे गिनाए जा सकते हैं। यद्यपि इन पात्रो की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि उतनी नही मिलती किन्तु फिर भी ये पात्र हमे ऐतिहासिक से प्रतीत होते है।

तिहासिक-पात्र—

'रग मे भग' की राजकुमारी, वीर कुम्भ, 'विकटभट' सवाई सिंह, 'गुरुकुल' के पमस्त गुरुजन, 'यशोधरा' की यशोधरा, सिद्धराज' के सिद्धराज जयसिंह तथा जगद्देव, काबा और कर्बला' के मुहम्मद शाह तथा इमाम हुसैन, 'विष्णुप्रिया' की विष्णुप्रिया तथा चतन्य और 'अर्जन और विसर्जन' के इउडोसिया, जानस तथा काहिना को ऐतिहासिक पात्रो की कोटि मे रख सकते हैं।

काल्पनिक-पात्र—

इस प्रकार के पात्रो मे कल्लू, कुलवन्ती तथा अजित जैसे पात्रो को लिया जा सकता है। यद्यपि काव्य की पीठिका मे ये पात्र भी ऐतिहासिक पात्रो जैसे प्रतीत होते हैं। ये पात्र भी पौराणिक पात्रो अथवा ऐतिहासिक पात्रो की तुलना मे कम आदर्शवादी अथवा सस्कृति-प्रिय नही है, अन्तर केवल पुराण या इतिहास से आने के स्थान पर कवि की मानसिक पृष्ठभूमि से आने का है।

निष्कर्ष—

कहने की आवश्यकता नही कि गुप्तजी ने ऐतिहासिक, पौराणिक तथा काल्पनिक पात्रो का प्रयोग बडे कौशल से किया है। ऐतिहासिक पात्रो की न केवल साहित्यिक अपितु एक ऐतिहासिक पीठिका भी होती है। उनकी इस पीठिका में परिवर्तन नही होता। हा, कुछ भगिमाएं दी जा सकती हैं। यदि किसी पात्र के ऐतिहासिक स्वरूप को ढक कर साहित्यकार अपना अभिलिषित रूप देगा तो पाठक उसकी प्रसशा नही कर सकते हैं। पौराणिक पात्र भी पुराणो मे अपनी एक परम्परा बना लेते हैं अतएव इन पात्रो के सम्बन्ध में भी साहित्यकार स्वच्छन्द नही हो पाता है। वह रावण को राम तथा राम को रावण नही बना सकता है। भारतीय सस्कृति के अनावरण के लिए गुप्तजी ने ऐसे पौराणिक पात्रो को चुना है जो पुराणो मे प्रथित हैं। यद्यपि ऐसे पात्रो के चरित्र के परीक्षण के लिये ऐसे अन्य पौराणिक पात्रो को भी लाना पडा है जो अपनी असत् प्रवृत्तियो के लिये ख्यात हैं किन्तु इनके सम्बन्ध मे अभीष्ट पात्र का चरित्र और अधिक उज्ज्वल उसी प्रकार हो सकता है जैसे सोना अग्नि मे दग्ध होकर कुन्दन बन जाता है। ये पौरा-णिक पात्र प्राचीन आदर्शो तथा सास्कृतिक सिद्धान्तो के साथ साथ आधुनिक युगीन समस्याओ का भी निराकरण प्रस्तुत करते हैं। काल्पनिक पात्रो के प्रयोग में कवि स्वच्छन्द होता है अपनी मानसिक सृष्टि के कारण वह उसे मन चाहा स्वरूप दे सकता है। गुप्तजी के काल्पनिक पात्र फिर भी देश प्रेम, आदर्श तथा वीरता से आकलित हैं। प्राय गुप्तजी की वे रचनाए जिनमे काल्पनिक पात्रो का प्रयोग किया गया है, आत्म

कथात्मक शैली मे प्रस्तुत की गई हैं, अतएव कही कही तो यह भ्रम हो जाता है कि गुप्तजी अपनी कथा तो नही कह रहे हैं। इस प्रकार के पात्रो द्वारा कवि अपनी अनुभूतियां तथा मान्यताएं प्रस्तुत करता है।

गुप्तजी के प्रबन्ध काव्यों मे एक ही पात्र का प्राधान्य है जिनमे सैरन्ध्री, नहुष, विकट-भट, शक्ति आदि काव्यों का नाम गिनाया जा सकता है। किन्तु इसके विपरीत साकेत, सिद्धराज, अर्जन और विसर्जन, काबा और कर्बला तथा वक संहार आदि ऐसी रचनाएं भी हैं जिनमे एक से अधिक प्रमुख पात्र हैं जिनका समान रूप से प्रावृतिक विवेचन आगे के अध्याय में किया जावेगा।

चतुर्थ अध्याय

प्रावृत्तिक विवेचना

प्रवृत्तियो से मनुष्य के अन्दर और बाहर दोनो का परिचय मिल सकता है। प्रबन्ध काव्य के पात्रो मे इनका विशेष महत्व होता है क्योकि प्रवृत्तियो के विश्लेषण से ही तो पात्रो का चारित्रिक विकास होता है। इन्ही से उनमे चारित्रिक सम्बन्ध स्थापित किया जाता है। गुप्तजी के प्रबन्ध काव्यो मे पात्र चयन से यह तथ्य पुष्ट हो जाता है। इतिहास और पुराणो के पात्र उनके प्रेरणा-स्रोत रहे हैं। इन प्रवृत्तियो को देखकर पात्रों के चरित्र को समझा या समझाया जा सकता है। यह कहने की आवश्यकता नही कि प्रवृत्तियों मे परिवर्तन होते रहते है और "मुण्डे मुण्डे रुचिर्भिन्ना" उक्ति के अनुसार प्रवृत्तिया भिन्न भिन्न पाई जाती हैं। पूर्वाध्याय मे जिन पात्रों को देखा है उनमे कुछ प्रवृत्तिया प्रथित हैं उनमे प्रमुख रूप से आदर्श, धर्म, देशप्रेम, कर्मण्यता, सेवा, दुष्ट-दमन, पुरातन प्रियता, त्याग, प्रगतिशीलता, योनिप्रेम, भौतिकता तथा समानता से सम्बन्धित प्रवृत्तिया गिनाई जा सकती हैं।

१: आदर्श—

आदर्श अनेक प्रकार के हो सकते हैं उनमे नैतिक, सामाजिक, दार्शनिक, व्यावहारिक, चारित्रिक और सास्कृतिक आदर्शों को लिया जा सकता है।[1] इस प्रवृत्ति के अन्तर्गत उर्मिला, रग मे भग काव्य की क्षत्रीय-कुमारी, विष्णुप्रिया, शकुन्तला, सैरंध्री और यशोधरा तथा इउडोसिया पात्रो को ले सकते हैं।

उर्मिला—

आदर्शात्मक प्रवृत्ति को लेकर चलने वाले पात्रो मे उर्मिला प्रथम नारी पात्र है। उसमें नैतिक, व्यावहारिक और चारित्रिक आदर्शों का पर्यवेक्षण भलीभाति किया जा सकता है। यह तो पहले ही कहा जा चुका है कि गुप्तजी ने उर्मिला के आदर्श चरित्र की

---

१ – विशेष विवेचन हेतु देखें — प्रिय प्रवास और साकेत की आदर्शगत तुलना, विद्यावाचस्पति श्रीवल्लभ शर्मा।

सृष्टि की है। उसके प्रति कवि ने न केवल सहानुभूति प्रदर्शित की है अपितु सम्मान की भावना का भी वहन किया है। लक्ष्मण अपने आराध्य युग्म के साथ वन को चले जाते हैं किन्तु उर्मिला साकेत नगरी मे ही निवास करती है। वह भी सीता की भाँति अपने पति के साथ वन को जा सकती थी किन्तु पति-आज्ञा-पालन एव वयोवृद्ध सास तथा श्वसुर के प्रति नैतिक-कर्तव्य की भावना के वशीभूत वह ऐसा नही कर पाती है। मनसा, वाचा और कर्मणा पति का अनुसरण करना भारतीय नारी का आदर्श रहा है, उर्मिला भी इसके लिये अपवाद नही है। वह भी तो अपने पति के सौख्य मे अपना सौख्य समझती है। प्रोषित पति का उर्मिला का व्यावहारिक आदर्श अत्यन्त सराहनीय है। वह अपने पति से विमुक्त होने पर स्त्रियोचित आदर्शों से पतित परिलक्षित नही होती है। विरह वेदना मे व्यथित रहने पर भी उसका व्यवहार ईर्ष्यालु नही वन पाया है। वह सूरदास की गोपिकाओ की भाति मधुवन को बुरा भला नही कहती है और न जायसी की नागमती की भाँति अपने विरह के ताप से वृक्षो तथा पक्षियो के पत्तो को झुलसाती हुई देखी जाती है। उसकी सखियो के प्रति भावना भी ज्यो की त्यो है। प्राय यह देखा गया है कि वियोग-वेला मे सयोग वेला का वातावरण वेदना की अभिवृद्धि करता है किन्तु उर्मिला के साथ ऐसी वात नही है। पतिगमनोपरान्त भी उसकी पशु-पक्षियो के प्रति सहानुभूति तथा सद्भावना दृष्टिगोचर होती है। ये समस्त क्रिया कलाप उसके व्यावहारिक आदर्श को परिपुष्ट करते हैं। उर्मिला के मन, वाणी मे आदर्श समाहित है। लक्ष्मण के प्रति एकनिष्ठ प्रेम की भावना उसके मन और वाणी से प्रकट होती है। वह ऐसी एक आदर्शमयी देवी है कि लक्ष्मण उसे अपनी पत्नी वनाने से पूर्व सेवा का भार वहन कर वन मे तपस्या करके उस जैसी नारी के पति के गुणो का संचय करना चाहते हैं जैसा कि अधोलिखित पक्तियो से अभिहित होता है—

> वन मे तनिक तपस्या करके,
> वनने दो मुझको निज योग्य।
> भाभी की भगिनी तुम मेरे,
> अर्थ नही केवल उपभोग्य॥ [१]

मन, वाणी और कर्म से वह अपने पति के मार्ग को रोडा वनाना नही चाहती है। यही कारण था कि वह अपने जीवन-उपवन के हरिण को न रोक सकी। डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार– "नारी की सफलता पुरुप को वाधने मे है किन्तु सार्थकता पुरुप की मुक्ति मे है।" [२] उर्मिला भी अपने सौन्दर्य तथा गुणो से लक्ष्मण

---

१ – गुप्तजी–साकेत, अष्टम सर्ग, पृ० २४६।

२ – आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, वाण भट्ट की आत्म कथा, पृ० ८४।

को मुग्ध कर लेती है, उन्हे बाँध लेती है किन्तु सेवा के लिये मुक्त भी कर देती है। इस प्रकार उसमे सफलता तथा सार्थकता दोनो का समावेश है, जो उसमे आदर्शात्मक विचार धाराओ का उन्मीलन करता है।

रंग में भंग की राजकुमारी—

यद्यपि इस क्षत्रिय बालिका को एक गृहस्थ रमणी बनने का सौभाग्य प्राप्त नही हो पाया है किन्तु फिर भी उसने अपने छोटे से जीवन मे ही भारतीय आदर्श नारी का चरित्र प्रस्तुत कर दिया है। आदर्शात्मक प्रवृत्तियो के पात्रो मे राजकुमारी को द्वितीय पात्र कह सकते है। यद्यपि उसे अपने पति के भरपूर दर्शन भी नही हो पाये है किन्तु फिर भी उसकी पतिव्रत-भावना तथा नैतिक आदर्श के प्रति मोह स्पष्ट दिखाई देता है। पति के दिवगत हो जाने पर इतनी कम आयु मे पुनर्विवाह न करने की दारुण प्रतिज्ञा करना तथा पति-वियोग मे सुलग-सुलग कर प्राण त्यागना आदर्श से रिक्त नही है।

शकुन्तला—

पौराणिक पात्रो के विषय मे गुप्तजी अधिक जागरूक रहे हैं उनमे भी स्त्री पात्रो का चरित्र-चित्रण तो अत्यन्त कुशलता से किया है। शकुन्तला भी आदर्श को प्रधानता देने वाले पात्रो मे तीसरा पात्र कही जा सकती है। परिणय से पूर्व शकुन्तला मे व्यावहारिक आदर्श का प्राधान्य है। वह पशु पक्षियो के प्रति न कवल सहानुभूति का भाव रखती है अपितु उनका स्वय लालन-पालन भी करती है। मृग शिशुओ के घायल मुख पर तेल लगाना तथा माधवी लता के साथ सखी भाव का प्रदर्शन, उसके व्यावहारिक आदर्श का उद्घोष करते है। प्रकृति प्रेमिका शकुन्तला के हृदय मे लताओ के पल्लवित तथा पुष्पित होने की सदैव आकाक्षा रहती है। इस व्यावहारिक आदर्श के कारण ही तो कण्व-ऋषि उसे अपने अतिथियो के सत्कार का भार सौपते है। कवि कहता है—

> रखती थी प्रेमार्द्र सभी को
> वह अपने व्यवहारो से,
> पशु पक्षी भी सुख पाते थे
> उसके शुद्धाचारो से ॥ [1]

गुप्तजी ने उपर्युक्त पंक्तिया "शकुन्तला" काव्य के मुख-पृष्ठ पर ही लिख कर शकुन्तला के व्यावहारिक आदर्श की सूचना देदी है। विवाहोपरान्त उसकी पतिपरायणता प्रकट होती है यद्यपि उसने दुष्यन्त के साथ गान्धर्व विवाह किया है किन्तु वह अपने कृत्य

---

१ — गुप्तजी-शकुन्तला, पृ० ७१।

पर अडिग है। पति-गृह जाते हुये कण्व के द्वारा दिए गए आदेश न केवल उसे आदर्श की ओर प्रेरित करते हैं अपितु उसके विचारो को प्रत्येक दृष्टिकोण से परिष्कृत करते हैं। उसका चारित्रिक आदर्श अत्यन्त महत्वपूर्ण है। दुष्यन्त के द्वारा तिरस्कृत होने पर भी कण्व के आश्रम मे न जाना उसके आदर्श चरित्र का सर्वोत्कृष्ट उदाहरण है। सतीत्व मे सन्देह करने वाले दुष्यन्त के यहाँ शरण न पाकर वह पृथ्वी माता से प्रार्थना करती है—

मा धरती ! तू मुझे ठौर दे तुझ मे अभी समा जाऊ ।[1]

गर्भ की अवस्था में पति अथवा पितृ-गृह के अतिरिक्त अन्य स्थान पर न रहना भारतीय आदर्श नारी का प्रण सा रहा है, जिसका निर्वाह शकुन्तला ने किया है। हेमकूट पर्वत पर दुष्यन्त के दर्शन मात्र से उसके हृदय में स्त्रियोचित क्षमा, करुणा आदि गुणो का अतिरेक हो जाता है। उसी स्थान पर क्षमायाचक दुष्यन्त को वह आत्मसमर्पण करती है जिसका चित्रण कवि ने किया है—

शकुन्तला को ज्ञान न अपना भी रहा।
आर्यपुत्र की — यही मात्र उसने कहा ॥[2]

इस प्रकार शकुन्तला मे चारित्रिक तथा व्यावहारिक आदर्शों को पर्याप्त स्थान मिला है।

सैरन्ध्री—

इन आदर्श प्रवृत्तिवाले पात्रो मे चतुर्थ पात्र है जिसमे चारित्रिक आदर्श को देखा जा सकता हैं। उसकी प्रवृत्ति भी उर्मिला, शकुन्तला आदि से पृथक नही है। यद्यपि सैरन्ध्री निर्वासन की अवधि यापन करती हुई अपने परिवार के साथ अनेक प्रकार की यातनाए सहन करती है किन्तु फिर भी कीचक द्वारा प्रदत्त वैभव का प्रलोभन उसे आदर्श से पतनोन्मुख नही कर पाता है। उसमे चारित्रिक बल है। वह अबला नही है। कामुक व्यक्तियो के लिए सबला हो जाती है। पातिव्रत आदर्श की रक्षा के लिए प्राण विसर्जन उसके लिए मोद का विषय है। वह कीचक से कहती है—

परनारी पर दृष्टि डालना योग्य नही है,
और किसी का भाग्य किसी को भोग्य नही है।[3]

वह अपनी परिस्थितियो से सन्तुष्ट है। कीचक के कामुकता पूर्ण व्यवहार के समय वज्र से भी कठोर प्रतीत होती है किन्तु भीम के द्वारा वध किए हुए कीचक देखकर

---

१ – गुप्तजी–शकुन्तला, पृ० २७।

२ – वही, पृ० ४०।

३ – गुप्तजी– सैरन्ध्री, पृ० ६।

उसके हृदय में करुणा की भावना भी फूट निकलती है। इसका एक मात्र कारण यह है कि वह किसी समय पुष्प से भी कोमल और किसी समय कुलिश से कठोर है। इस प्रकार के चरित्र चित्रण मे ही सैरन्ध्री के स्रष्टा का साफल्य निहित है। पति अथवा परमेश्वर के अतिरिक्त किसी से प्रार्थना न करने वाली इस नारी मे चारित्रिक आदर्श का प्रामुख्य है।

यशोधरा—

के चरित्र मे भी आदर्श की प्रवृत्ति की प्रमुखता पाई जाती है। आदर्श चरित्र की प्रतिष्ठा करते समय गुप्तजी ने अपने इस पचम नारीपात्र मे भी नैतिक आदर्श के दर्शन किये हैं। क्षणभगुर भव को राम राम करके सिद्धार्थ तो चले गये किन्तु यशोधरा राहुल-जननी वनकर राहुल का पोषण करती है और गोपा बनकर शुद्धोधन की शुश्रूषा यह हम कही कह आए है कि यशोधरा के अश्रुओं से साहित्य के मल प्रक्षालन की प्रेरणा कवि को साकेत की तपस्विनी उर्मिला से मिली है। अतएव प्रेरक का अधिक महत्व होना चाहिए। ऐसा प्रतीत होता है कि वात्सल्य और विप्रलम्भ शृगार एक साथ आकर यशोधरा के चरित्र को उर्मिला के चरित्र की अपेक्षा अधिक उन्नत कर देते हैं। आखो से अश्रु तथा पयोधरो से दूध एक ही समय मे वहाकर यशोधरा अधिक सहानुभूति को प्राप्त कर सकती है। जो हो, किन्तु यह सर्वथा सत्य है कि वियोग की अवधि को विताने के लिए राहुल उसका पाथेय है। गोपा चारित्रिक आदर्श से युक्त भारतीय नारी है किन्तु राहुल के लिये वह एक आदर्श मा है क्यो कि वह अपने पुत्र को वश-परम्पराओ से अवगत करती है। इसके साथ साथ वह राजा रानी की कहानी कहकर उसका मनोविनोद भी करती है। गृहस्थ के भार को जब वह एकाकिनी वहन करने मे समर्थ सिद्ध होती है तो वह अपने वनःमालो को हृदय की गहनतम हूको से बुलाती है। इसी मे तो उसकी पति-परायणता निहित है। ऐसा प्रतीत होता है कि यशोधरा की प्रवृति चारित्रिक आदर्शों से युक्त पुत्र-वधू, पत्नी तथा माता वनने मे सन्निहित है। उसमे आदर्श पत्नी का रूप अधिक स्पष्ट हो पाया है।

विष्णु प्रिया—

आदर्श चरित्र को लेकर चलने वाले नारी पात्रो से विष्णुप्रिया को छटा प्रमुख पात्र मान सकते हैं। जिस प्रकार सैरन्ध्री, उर्मिला और यशोधरा पतिपरायण हैं, उनमें एक-निष्ठ प्रेम की प्रधानता है, ठीक उसी प्रकार विष्णुप्रिया भी प्रतिपरायणा तथा एक-निष्ठ प्रेम वाली नारी है। इन नारियो से वढकर उसका एक गुण है और वह यह कि उसमे भक्ति का अटूट भाव। चैतन्य के चले जाने पर वह अपनी वृद्धा की शुश्रूषा मे

तत्पर रहती है अतएव जहा वह आदर्श-चरित्र से आकलित है वहा उसमे सेवा तथा श्रमशीलता की भी प्रधानता है। अपने नैतिक धर्म को दृष्टि मे रखकर विष्णुप्रिया चैतन्य की उपासिका है तथा शारीरिक दृष्टिकोण से वह कर्म की उपासिका है। यशोधरा तथा उर्मिला के समक्ष उदरपूर्ति की समस्या नही है किन्तु विष्णुप्रिया को वियोग की यातना के साथ साथ अन्य यातनाए भी झेलनी पडती है। इस प्रकार की परिस्थितियो मे विष्णुप्रिया का चरित्र यशोधरा तथा उर्मिला से भी उन्नत माना जा सकता है। विष्णुप्रिया की मुख्य प्रवृत्ति नैतिक आदर्श के परिपालन मे है, जिसमे श्रमशीलता तथा सेवा वृत्ति का स्वत प्रवेश हो जाता है। यदि चैतन्य की वृत्ति भगवत् भक्ति मे थी तो विष्णुप्रिया की भी भक्ति भावना कम नही थी। मनुष्य की पूजा ईश्वर की पूजा है। चैतन्य परमात्मा के भक्त तथा सेवक हैं तो विष्णुप्रिया भी उसी परमात्मा की सेविका है जो उसकी कातरता सुनकर चैतन्य को छोडकर आ सकते हैं। सब मिलाकर यह कहा जा सकता है कि विष्णुप्रिया मे चारित्रिक आदर्श की प्रवृति तो है ही साथ ही साथ भक्ति तथा सेवावृत्ति का भी अटूट परिचय मिलता है। इतना सब कुछ होते हुए भी उसने आसू नही बहाए हैं यह उसकी सहनशीलता का द्योतक नही है तो फिर क्या है? उसके आसूओ से यमुना का जल काला होते नही देखा गया।

इउडोसिया—

विष्णुप्रिया के उपरान्त इस प्रवृत्तिवाली नारी पात्रो मे सप्तम स्थान इउडोसिया को दे सकते हैं। यद्यपि कवि ने सैरन्ध्री, शकुन्तला, उर्मिला यशोधरा तथा विष्णुप्रिया के समान परित्राता के स्वरूप मे चित्रित तो नही किया है किन्तु चरित्र की उदात्तता की कमी भी नही है। 'रग मे भंग' की राजकुमारी का परिणय तो हो चुका था तथा अपने पति स्मृति में उसने अपने प्राणो का परित्याग किया किन्तु इउडोसिया की अवस्था उससे भी भिन्न है। जोनस का प्यार, उसके प्रति वासनामय है फिर भी वह जोनस से शादी कर सकती थी किन्तु जोनस की भीरुता तथा उसके द्वारा भारतीय सास्कृतिक बन्धनो का अतिक्रमण उसके उपर प्रतिकूल प्रभाव डालते हैं। भारतीय ललनाए सदैव वीर व्यक्तियो के प्रति आकर्षित होती हैं फिर इउडोसिया कायर तथा देशद्रोही जोनस को अपना पति कैसे बना सकती थी? यह उसके चारित्रिक आदर्श का निदर्शन है। वह पराक्रम शालिनी है। अपना जन्मभूमि के प्रति उसमे अगाध प्रेम है। जब जोनस वासना से अन्धा होकर उसे प्राप्त करने प्रयास करता है तो वह कहती है—

> कैसे करु? अर्पित है देह, लो यही,
> आओ वीर! पूरी करो तुम निज वासना।

उपर्युक्त पक्तियो के कहते कहते ही वह आत्म-हत्या कर लेती है किन्तु चरित्र तथा धर्म से च्युत नही होती है। अतएव चारित्रिक आदर्श की प्रवृत्ति के कारण वह गुप्तजी के उक्त नारी पात्रो की कोटि में रखी जा सकती है। देश प्रेम की भावना भी वेजोड है।

२: धर्म—

गुप्त जी के कुछ ऐसे पात्र हैं जिनमें धार्मिक भावना का प्राधान्य है और वे पात्र धर्म सम्बन्धी द्वितीय प्रवृत्ति के अन्तर्गत आते है। ये पात्र धर्म मे उपासक होकर जीवन के अन्तिम क्षणों तक धर्म की प्रतिष्ठापना मे प्रयत्नशील रहे हैं। इन पात्रों मे युधिष्ठिर, जनक हरिगोविन्द, तेगवहादुर, गोविन्द सिंह और उनके पुत्र फतहसिंह, जोरावर, मुहम्मद शाह इमाम हुसेन और चैतन्य का नाम लिया जा सकता है।

युधिष्ठिर —

जयभारत के पढने के उपरान्त यह ज्ञात होता है कि उसका प्रत्येक सर्ग किसी न किसी रूप में युधिष्ठिर से सम्बन्धित है अत. वे कथावस्तु के नेता हैं। उन्हे गुप्तजी के धार्मिक प्रवृत्ति वाले पात्रो मे प्रथम स्थान पाने का सौभाग्य प्राप्त है। उनके प्रत्येक क्रियाकलाप में धर्म साथ रहता है। उसके प्रति उनका मोह झलकता है। वे यश, सम्मान. धन, सन्तान एव सभी सुखो को धर्म की तुलना में नगण्य समझते हैं जैसा कि इन पक्तियो से देखा जा सकता है—

जीवन-यश सम्मान-धन-सन्तान सुख सब कर्म के,
मुझको परन्तु शताश भी लगते नही निज धर्म के।[1]

युधिष्ठिर द्वारा ग्रहीत धर्म कई भागो में विभक्त किया जा सकता है जाति-धर्म, कुल-धर्म, युद्ध-धर्म, सामाजिक-धर्म, और गृहस्थ धर्म आदि उसके प्रत्यग हो सकते हैं। इन सभी के प्रति उनका आकर्षण परिलक्षित होता है। युधिष्ठिर क्षत्रीय वर्ग के हैं। क्षत्रीय का अर्थ होता है — क्षत से त्राण करने वाला, जिसमे शरणागतवत्सलता और दीनो के उद्धार की भावना भी आ जाती है। इसी दृष्टि से वे जाति-धर्म के पक्के प्रतिपालक सिद्ध होते हैं। वे धर्म भीरू अवश्य है किन्तु कायरता उनसे अधिक दूर रही है। अपने जन्म-सिद्ध अधिकारो के न दिये जाने पर वे युद्ध करने का उद्घोष करते है जो जातीय-धर्म के सर्वथा अनुकूल है। 'वनवैभव' काव्य मे उनकी शरणागत-वत्सलता की भावना मुखरित हो उठती है। उन्होने अपने प्रतिपक्षियो की विषय परिस्थितियों से अनुचित लाभ को प्राप्त करना सीखा ही नही है तभी तो वे भीम को शरणागत का अपमान करने से रोकते हैं। गृहस्थ

---

१ – गुप्तजी–जयभारत, मुख पृष्ठ।

और कुल-धर्म के परिपालन मे वे सदैव सचेष्ट रहते हुए प्रतीत होते हैं। अपने भाइयो, गुरु तथा माता आदि के प्रति विनयशील हैं और उनके प्रति कर्तव्यो का भलीभाति पालन करते हैं। युद्ध करते समय भी उनमे सत्य का प्राधान्य रहता है। मानवीय दृष्टिकोण से वे सत्य के पुजारी हैं। सत्य के प्रतिपालक युधिष्ठिर को देखकर सभी आश्चर्यचकित रहते हैं, जबकि वे अश्वस्थामा की मृत्यु की अनिश्चियात्मक सूचना देते हैं। इसीलिये तो 'युद्ध' नामक काव्य मे इस असत्य के प्रति अर्जुन उन्हें सजग करता है। यद्यपि वे युद्ध मे स्थिर रहने वाले है किन्तु आदर्श तथा धर्म ने उनके इस रूप को आच्छादित सा कर दिया है। उसके स्थान पर करुणा, साधुता, सन्यस्त भावनाओ का समावेश होगया है। युधिष्ठिर के धर्म-भीरू होने के कारण ही तो उनके समस्त परिवार को वन-वन मे भटकते हुए यातनाए सहन करनी पडी। अतः युधिष्ठिर में धर्म के प्रति अगाध प्रेम प्रतीत होता है जिसके कारण वे पुरातनप्रिय भी कहे जा सकते हैं तथा 'युद्ध' काव्य में थोडा सा असत्य-भाषण मानवीय स्वभाव के कारण उपेक्षा की दृष्टि से देखा जा सकता है। युधिष्ठिर के द्यूत, खेलने से परिवार पर आपत्ति टूट पडती है किन्तु गुप्तजी इस पौराणिक-पीठिका को नहीं बदल सके। यदि वे ऐसा करते तो कथा का विकास नही हो सकता था।

गुरु नानक, हरिगोविन्द, तेगबहादुर, गोविन्द सिंह और उनके पुत्र फतहसिंह जोरावर आदि गुरु कुल के कर्णधारो को इस प्रवृत्ति के अन्तर्गत लिया जा सकता है। इनका मुसलमानो से सदैव संघर्ष रहा और ये गुरुकुल के गुरु-जन धर्म की बलिवेदी पर एक के बाद एक बलिदान होते गये। हिन्दू-धर्म का तिरस्कार इन सबको असह्य रहा। यदि ऐसी इनकी धार्मिक प्रवृत्ति न होती तो जोरावर, फतहसिंह जैसे नादान बच्चे विकास से पूर्व ही काल के कराल गाल मे नही चले जाते। स्पष्ट है कि इन सभी गुरुजनो की प्रवृत्ति धार्मिक रही।

कुछ व्यक्तियो ने इन गुरुओ का स्वागत भी किया किन्तु मूलोच्छेदन करने वालो की संख्या अधिक थी। हिन्दू धर्म की सुरक्षा को ही इन विभूतियो का जन्म हुआ प्रतीत होता है। उनका आदि, मध्य और अन्त हिन्दुत्व से परिव्याप्त है। गुरु गोविन्दसिंह ने तो यह स्पष्ट कह दिया है कि धर्म जाति से अधिक महत्वपूर्ण है। यदि धर्म परिपालक को जाति से च्युत भी होना पड़े तो वह व्यक्ति निन्दनीय नही होता है। यद्यपि आधुनिक युग की सकीर्णता की भावना ने सिक्ख धर्म को हिन्दू धर्म से पृथक कर दिया है किन्तु सिक्ख गुरुओ की कीर्तिपताका न केवल सिक्खो पर अपितु हिन्दुओ पर भी समान रूप से लहरा रही है।

३: देश-प्रेम—

यह कहने की आवश्यकता नही कि प्रवत्तिया अर्जित होती हैं। उनका विकास

तथा ह्रास मनुष्य के वशीभूत होता है। देशप्रेम इसी प्रकार की प्रवृत्ति है। इस तीसरी प्रवृत्ति को प्रामुख्य देने वाले कुम्भ तथा जगद्देव हैं। यद्यपि यह बीच मे ह्रासोन्मुख हो जाती है किन्तु चरित्र का पर्यावसान इसी प्रवृत्ति मे होता है।

कुम्भ—

देश-प्रेम की प्रवृत्ति के पोषको मे कुम्भ प्रथम पात्र है। बून्दी का निवासी यह वीर गोनोली नरेश लाखा के साथ है। लाखा के पूर्वजो की पराजय के प्रतिशोध के लिये एक बून्दी का कृत्रिम दुर्ग बनवाया जाता है उस दुर्ग के अवलोकन मात्र से कुम्भ की देश-प्रेम की सुसुप्त भावना जाग्रत हो जाती है। सम्पूर्ण वस्तुओ का परित्याग कर वह देश-भक्ति से गद् गद् होकर आराधना करता है-—

> त्याग पर-आरा, रख, मारे हुए मृग को वही,
> सुध रही उस वीर को, उस काल अपनी भी नही।
> वन्दना उस दुर्ग की करने लगा अति भाव से,
> शीश पर उसने वहा की रज चढाई चाव से।

दुर्ग के दर्शन मात्र से कुम्भ अपने आत्म समर्पण की पश्चातापाग्नि मे प्रज्वलित हो उठता है। आक्रोश की भावना फूट पडती है। वह सोचता है, एक ओर स्वामी है, दूसरी ओर उसकी मातृ-भूमि बून्दी का सम्मान है। वह दोनो के सम्मान रखने की चेष्टा करता है किन्तु असफल रहने पर देश प्रेम की विजय होती है। अब उसकी दृष्टि मे राजा तथा रक समान हो जाते हैं। अन्त मे अपने उष्ण रक्त का अपनी मातृभूमि को अर्घ्य-दान प्रस्तुत कर वह वीरगति प्राप्त करता है। यदि देश-प्रेम की भावना प्रमुख न होती तो. उसके प्राण-विसर्जन का कोई प्रश्न ही नही था। किन्तु गुप्तजी की यह विशेषता है कि वे अपने भ्रान्त पात्रो को विचार तथा सुधार के लिए एक अवसर प्रदान अवश्य करते हैं। पात्र के लिये वह भाग्य या अभाग्य का विषय बन जाता है। द्वितीय अवसर के आने पर वह पात्र अपनी मूल प्रवृत्ति के अनुसार ही कार्य करता है। कुम्भ के साथ भी ऐसा ही हुआ है। कृत्रिम दुर्ग-दर्शन उसके लिए सुधार का प्रेरक बनकर आता है। इस समय वह अपनी पूर्व पराजय के कालुष्य का भी प्रक्षालन कर लेता है।

जगद्देव—

देश प्रेम की प्रवृत्ति वाले पात्रो मे जगद्देव का द्वितीय स्थान है। यह पूर्वाध्याय मे कहा जा चुका है कि यद्यपि गुप्तजी 'सिद्धराज' मे मध्यकालीन वीरो की झलक प्रस्तुत

---

१ – गुप्तजी-रंग मे भंग, पृ० २५।

करने के लिए प्रयत्नशील रहे है और सिद्धराज जयसिह उनका अभिप्रेत पात्र है किन्तु जगद्देव भी उन्ही मध्यकालीन वीरो मे से एक है और अपनी प्रवृत्तियो के आधार पर जयसिह से कम महत्वपूर्ण प्रतीत नही होता है ।

'सिद्धराज' काव्य के द्वितीय सर्ग मे जयसिह मालव पर आक्रमण करता है जगद्देव वहा का प्रमुख सेनानी है । देशभक्ति की भावना उसमे उत्साह का सचार करती है । प्रतिपक्षियो के आघातो से मूर्छित हो जाने पर भी वह युद्ध करने को प्रस्तुत होता है और फिर ऐसा युद्ध-कौशल दिखलाता है कि विपक्षियो के छक्के छूट जाते है, वह जयसिह से स्पष्ट कह देता है—

मेरी यह जन्मभूमि जननी जगत मे
मेरे प्राण रहते रहेगी महारानी ही ।
किंकरी न होगी किसी अन्य नरपाल की ।[1]

किन्तु मालव का समस्त वातावरण उसकी इस प्रवृत्ति को प्रोत्साहन न देकर हतोत्साहित कर रहा है अतः वह सिद्धराज के वीरोचित विनय, विवेक तथा व्यवहार से पराजय स्वीकार कर लेता है । काव्य के तृतीय सर्ग मे रानकदे के सतीत्व की रक्षा करते समय उसे अपने इस पराजय स्वीकार करने के पाप का परिशोध करने का अवकाश मिलता है । उसके अवचेतन मस्तिष्क मे स्थित देश-भक्ति जागृत हो जाती है । अबला का त्राण उसके लिए सुन्दर बहाना है किन्तु जब जयसिह खड्ग छोड कर ही चलागया तो वह किससे युद्ध करे । इस प्रकार कुम्भ को भाति जगद्देव को भी अपने सुधार का पूर्ण अवसर प्राप्त नही हो पाता है । इसका तात्पर्य यह नही कि उसमे देश-भक्ति की भावना का प्राधान्य नही है ।

४: कर्मण्यता—

गुप्तजी के पात्रो मे चतुर्थ प्रवृत्ति कर्मण्यता की पाई जाती है । यद्यपि कर्मण्यता से तात्पर्य उद्योग शीलता से है किन्तु उसमे वीर वृती तथा उत्साह की प्रवृति का समावेश भी हो जाता है । अर्जुन, कल्लू-किसान, भीम, भीष्म पितामह, सवाईसिंह, सिद्धराज जयसिह, जगद्देव, कुम्भ को इस श्रेणी मे रखा जा सकता है ।

अर्जुन—

कर्मण्यता की प्रवृत्ति का प्रथम पात्र अर्जुन है । वह अपनी वीरता के लिये प्रथित है और "वीर भोग्या वसुन्धरा" का पोषक है । यद्यपि वह अपने वरिष्ठ भाई के सकेतो पर नाचता दिखाई देता है किन्तु यह उसकी विनयशीलता है । कर्ण जैसे महारथी

---

१ – गुप्तजी–सिद्धराज, पृ० ४७ ।

को पराजित करना अर्जुन के ही वश की बात है। यही नही अपितु वह युद्ध-कला के आचार्य गुरु द्रोणाचार्य को भी परास्त कर देता है। वह सात महारथियो से एक साथ ही युद्ध करता है। बाणशैया-शायी-भीष्म पितामह को पृथ्वी से आशुप्राप्त जल पिलाने मे केवल अर्जुन को ही सफलता प्राप्य होती है। जयद्रथ-वध के समय वीर वृत्ति उसके रोम रोम मे समाहित है। 'वन वैभव' मे युधिष्ठिर की दृष्टि मे केवल अर्जुन ही एक ऐसा पात्र है जो कौरवो को यक्षो से निष्कृति दिलाने मे समर्थ हो सकता है। यद्यपि महाभारत के युद्ध के प्रारम्भ के समय उसकी वीर भावना पर भौतिकता की भावना विजय प्राप्त करती सी प्रतीत होती है किन्तु कृष्ण का उपदेश उस व्यामोह का निराकरण कर देता है। अत. अर्जुन मे वीर या शौर्य वृत्ति प्रधान ह जो कर्मण्यता का एक अग कही जा सकती है।

कल्लू—

जिस प्रवृत्ति का पोषक है जो इस प्रकार के पात्रो मे दूसरे स्थान पर आता है। " उद्यमेन सिध्यन्ति कार्याणि न मनोरथै. " की भावना मे आस्था रखने वाले कल्लू के हृदय को समाज के ठेकेदारो तथा समाज ने टटोल कर न देखा। कृषक-वर्ग अपनी उद्योग-शीलता या श्रम-शीलता के लिये प्रख्यात रहा है, फिर कल्लू भी तो किसान ही है। वह कठिन परिश्रम से उच्च वर्ग वाले व्यक्तियो को गेहू तथा स्वय के लिये मटरा का उत्पादन करता है। किसान से कुली बनना उसकी श्रम-शीलता के सोपान हैं। कुछ लोग इसे असन्तोष की वृत्ति मान लेते हैं किन्तु श्रमशीलता तथा असन्तोष परस्पर इतने अधिक विरोधी नही होते। जहा असन्तोष है, वहा उद्योगशीलता जन्म लेती है। कल्लू कर्मशील पात्र है इस विषय मे दो मत नही हैं।

इस कर्मण्यता मे सहनशीलता का योग है। जिससे इस किसान का व्यक्तित्व और अधिक निखर जाता है। कर्मण्य व्यक्ति किसी की झिडकिया कम ही सहता है किन्तु कल्लू ऐसा है कि परिश्रम करते हुए भी हा-हा खाता जाता है तथा आसुओ का पान करता जाता है। वह जीवन-पर्यन्त अपनी उद्योगशीलता तथा सहन-शीलता के मध्य पिसता रहता है। वह इस चक्की से मुक्ति की प्रार्थना करता है—

हा हा खाना और सर्वदा आसू पीना,
नही चाहिये नाथ हमे अब ऐसा जीना।[1]

भीम—

अपने पराक्रम के लिये प्रसिद्ध है। कर्मण्यता की प्रवृत्ति वाले पात्रो में वह तीसरा पात्र है। जब किसी अनुपयुक्त अवसर पर भीम की शौर्य भावना उबल कर निकलना

---

१ – गुप्तजी–किसान, पृ० ५।

चाहती है युधिष्ठिर तथा कुन्ती के शीतल वचन उसे सयत कर देते हैं। भीम ने अपने शौर्य का परिचय हिडिम्ब से लडते समय दिया है। 'वक-सहार' मे भी इस प्रवृत्ति का उन्मीलन भली भाति हुआ है। 'जयभारत' मे वह प्रमुख सेनापतियो की कोटि मे तो आता ही है किन्तु उसके अन्यत्र भी उसे उत्तम योद्धा के रूप मे स्वीकार किया गया है। हिडिम्बा से प्रणय होते समय ऐसा प्रतीत होता है कि भीम अपनी प्रवृत्ति को परिवर्तित कर उसके स्थान पर योनि-प्रेम की भावना को अपनाएगा किन्तु ऐसा नही होता है। हिडिम्बा की प्रणय सम्बन्धी आत्म-समर्पण की भावना उसके शौर्यवृत्ति को स्पर्श नही कर पाती। वह स्पष्ट कह देता है—

इन्द्रियो के भोग की क्या बात कहू तुझमे,
प्राणो के लिये भी यह होगा-नही मुझसे।[1]

भीम की शक्ति का प्रयोग कवि ने उपयुक्तता से किया है। उसकी शक्ति अनायास परपीडन मे व्यय नही होती है। वह रक्षात्मक प्रवृत्ति के साथ प्रयुक्त होती है। उदाहरण के लिए कीचक-बध तथा अभिमन्यु की रक्षा को लिया जा सकता है। कीचक वध मे भीम की शक्ति दुष्टो के सहार के परिवेश मे प्रयुक्त हुई है तो अभिमन्यु की रक्षा के समय वह रक्षात्मक बन गई है।

भीष्म पितामह—

में शौर्य का प्राधान्य है। 'जयभारत' तथा 'जयद्रथबध' मे वे एक प्रमुख सेनानी के रूप मे आते है किन्तु 'युद्ध' नामक काव्य मे उनके शौर्य का प्रस्फुटन हुआ है। चक्रपाणि कृष्ण की, अपने पराक्रम के बल से, प्रतिज्ञा भग कर देना सरल काम नही है, किन्तु यह उनका निश्चय घृष्टता की भावना से प्रेरित नही है। यह तो भगवान के ऐश्वर्य तथा भक्त के दैन्य की मुठभेड है। किन्तु यह निर्विवाद है कि उनकी शौर्य प्रवृत्ति ने कृष्ण पर विजय प्राप्त की और उन्हे शस्त्र ग्रहण करने को बाध्य कर दिया। यह उनके जीवन का सबसे अधिक महत्वपूर्ण अश है। भीष्म पितामह शौर्य-प्रवृति-प्रधान चतुर्थ पात्र हैं।

सवाई सिंह—

'विकट भट' मे वीर प्रवृति का पात्र है, जो गुप्तजी के प्रथित पात्रो में पचम स्थान पर आता है। उसमे एक अपूर्व उत्साह है। जिसके कारण वह अपने पूर्वजो की परम्परा का निर्वाह कर पाया है। इस उत्साह वृत्ति के निर्माण में उसकी क्षत्राणी मा का बहुत कुछ हाथ है। उमे शैशव काल से स्वाभिमान-रक्षा की शिक्षा दी जाती है। वह

---

१ – गुप्तजी–हिडिम्बा, पृ० १९।

मैथिली शरण गुप्त

[प्रबन्ध काव्यों के प्रमुख पात्र और उनकी प्रवृत्तियां]

डॉ० राधेश्याम शर्मा

मंगल प्रकाशन
गोविन्द राजियों का रास्ता,
जयपुर — १

प्रकाशक
उमरांव सिंह मंगल
सञ्चालक
मंगल प्रकाशन
गोविन्द राजियो का रास्ता,
जयपुर १

प्रथम संस्करण १९७५
मूल्य
१५-००

मुद्रक
मंगल प्रेस
नाहर गढ रोड़,
जयपुर- १

समर्पण

"हा वत्स ! हा वत्स !! इति सा रुदन्ती,
दिवंगता मे जननी सुपूज्या ।
तस्या स्मृति लक्ष्यमहं विधाय,
प्रस्तौमि पुष्पं विदुषां समक्षे"

—राधेश्याम शर्मा

भूमिका

आधुनिक कविता मे अर्वाचीन पात्रों का समावेश हुआ है किन्तु गुप्तजी के काव्यो के पात्र प्रायः प्राचीन हैं यद्यपि 'अजित' तथा 'आंजलि और अर्घ्य' जैसी अन्य रचनाओ में अर्वाचीन पात्रो का प्रयोग भी हुआ है, परन्तु ऐसे पात्र उंगलियो पर गिनने योग्य ही हैं। इनके पात्र वर्गपात्र हैं। जो मानव-वर्ग, दैत्य-वर्ग, देव-वर्ग, ऋषिवर्ग, कृषक-वर्ग, राजा-वर्ग आदि के प्रतिनिधि बनकर आये है। गुप्तजी ने इन पात्रो को पुराण और इतिहास के विभिन्न क्षेत्रो से चुना है। जहाँ काव्य मे पात्रो का प्रश्न उठता है वहाँ काव्य का प्रबन्ध रूप हमारे समक्ष स्वय आ जाता है। गुप्तजी की प्रतिभा सर्वतोमुखी है। उन्होने नाटक, पद्य, मुक्तक सभी कुछ लिखे हैं किन्तु इस प्रगीतकाव्य के काल मे प्रायः प्रबन्ध काव्य ही लिखे हैं, यह उनकी अपनी विशेषता है। प्रबन्ध-काव्य लिखने का कारण यह है कि वे भारतीय-संस्कृति का स्वरूप प्रस्तुत करना चाहते हैं जिसका स्वीकरण प्रबन्ध काव्य मे सरलता से हो सकता है।

यो तो गुप्तजी के काव्य की सीमाएं प्रायः पुराणो से निर्मित हैं, किन्तु उसका लक्ष्य आदर्शवादी है। उनका नाम भक्त कवियो में लिया जा सकता है और राम उनके इष्ट देव हैं। अतएव उनको राम काव्य परम्परा के कवियो मे परिगणित करने मे कोई आपत्ति दृष्टिगोचर नही होती। राम जनता को वर्तमान समय मे अधिक प्रिय हैं क्योकि राम भारतीय संस्कृति के प्रतिनिधि के रूप मे अवतरित हुए हैं, परिणामत गुप्तजी के प्रत्येक प्रबन्ध काव्यो की पृष्ठभूमि भारतीय संस्कृति तथा भारतीय आदर्श ही हैं। वे अपने प्रबन्ध काव्यो मे किसी एक प्रमुख पात्र को लेकर चले हैं एव उस पात्र विशेष को किस प्रकार से आदर्शवादी, उदात्त भावनाओ वाला, भारतीय सस्कृति का प्रतिनिधि बनाया जाय, यह गुप्तजी का प्रयास परिलक्षित होता है। उनके प्रबन्ध काव्यो मे कोई न कोई पात्र, चाहे वह पुरुष-पात्र हो या नारी, ऐसा अवश्य होता है जो भारतीय सस्कृति के किसी पहलू विशेष का प्रतिनिधित्व करता है। अतः प्रस्तुत विषय के अन्तर्गत गुप्तजी के प्रबन्ध-काव्य और इस प्रकार के प्रमुख पात्रो का अध्ययन किया गया है।

विषय की आवश्यकता —

गुप्तजी मे प्राचीन के प्रति पूज्य भाव तथा नवीन के प्रति उत्साह है। उनमें सामजस्य की प्रवृति अतः उनके पात्र है प्राचीन भारतीय संस्कृति तथा आदर्शवाद के प्रतिनिधि तो हैं ही, इसके साथ साथ वे आधुनिक युगीन प्रवृतियो से भी किसी न किसी

रूप मे आकलित हैं। पौराणिक तथा ऐतिहासिक कथावस्तु को लेकर चलने वाले काव्य वर्तमान की अनेक समस्याओ का निराकरण प्रस्तुत करने मे समर्थ होते हैं। यह कहना सगत ही होगा कि जहाँ गुप्तजी के काव्यो मे प्राचीन वैभव की दुन्दुभी बजती है, वहा वर्तमान को सन्देश भी मिलता है। आवश्यकता इस बात की है कि गुप्तजी के प्रबन्ध-काव्यो के प्रमुख पात्रो मे आधुनिक युगीन तथा कुछ मौलिक प्रवृत्तियो का समावेश कहा तक और किस प्रकार हो पाया है, इसका निरूपण किया जाय।

गुप्त जी के प्रबन्धो के पात्र प्रायः आदर्शवादी हैं किन्तु फिर भी वे आधुनिक युगीन विशेषताओं से आकलित हैं। यद्यपि कवि "नियति कृत नियम रहिता" होता है तथा वे अपनी रुचि के अनुकूल प्रथित पात्रो मे भी भगिमाए देकर उनकी सृष्टि करता है, जैसा कि अधोलिखित श्लोक से स्पष्ट है :—

अपारे काव्य ससारे, कविरेव प्रजापतिः
यथास्मै रोचते विश्वं तथेदं परिवर्तते —अग्निपुराण (३३९–१०)

तथापि वह समाज के हित का विस्मरण नही कर सकता। उसकी कला, जीवन तथा समाज से प्रभावित होती है तथा ससाज के लिए होती है। विशेषतः गुप्तजी की कला तो समाज के लिए ही है, 'कला कला के लिए' कह कर उनकी कला को स्वार्थिनी बनाना है।

प्रस्तुत शोध-निबन्ध को, विषय-विवेचन और मूल्याकन की सुविधा से पाच भागो मे विभक्त किया गया है।

प्रथम अध्याय मे गुप्तजी के काव्य की पीठिका पर विचार किया गया है। इसका एक मात्र कारण यह है कि आधुनिक कवियो के परिपार्श्व मे गुप्तजी के काव्य की पीठिका का अवलोकन, प्रस्तुत विषय के मूल्याकन को और अधिक सरल बना देता है।

द्वितीय अध्याय मे मैंने गुप्तजी के प्रबन्धो का विवेचन किया है। गुप्तजी की द्वापर जैसी एक दो रचनाएं जिनका प्रबन्धत्व अधिकाश विद्वानो को स्वीकार नहीं, इस निबन्ध मे स्थान नही पा सकी हैं।

तृतीय अध्याय मे प्रत्येक प्रबन्ध के प्रमुख पात्रो का निर्धारण किया गया है। प्रमुख पात्रो से तात्पर्य नायक तथा अन्य उसकी समता वाले पात्रो से है। इस प्रकार किसी प्रबन्ध मे एक से अधिक पात्रो का विवेचन भी कर दिया गया है।

चतुर्थ अध्याय मे गुप्तजी के प्रमुख पात्रो का प्रावृतिक विवेचन प्रस्तुत किया गया है।
'प्रवृति' शब्द से तात्पर्य यहा पात्रो की मौलिक प्रवृतियो से है। जो समयानुसार परि-
होती रहती है, किन्तु मूल प्रवृति स्थायी रहती है। अतएव पात्रो की मूल प्रवृति के
साथ उसकी काव्य विशेष मे व्यक्त हूई गौण प्रवृति का भी निरूपण किया है।

पंचम अध्याय मे पात्रों का तुलनात्मक अध्ययन किया गया है। तुलनात्मक
न से तात्पर्य यहा गुप्तजी के उस पात्र विशेष की प्रवृति का अध्ययन है जो उनकी
से अधिक रचनाओं मे अवतरित हुआ है। यद्यपि यथाशक्ति अन्य कवियो के काव्यो में
र गुप्तजी के पात्रो का भी तुलनात्मक अध्ययन दे दिया गया है। इस प्रकार विषय
गौरव के निर्वाह करने का पूर्ण प्रयास किया गया है। विषय की नवीनता एव उपयो-
ता, से विद्वान स्वय अभिज्ञ हैं।

मुझे इस विषय मे राजस्थान विश्व विद्यालय के वर्तमान हिन्दी विभागाध्यक्ष
० सरनामसिह शर्मा 'अरुण' से प्रेरणा और सहायता मिली है तथा 'दीप' और 'निर्मल
क मित्रो ने भी मुझे यथोचित सहायता दी है। मैं इनके प्रति हार्दिक आभार व्यक्त
हूं।

भाई उमराव सिह मंगल के प्रति कृतज्ञता-ज्ञापन में अपना कर्तव्य समझता हूं
ो बडे श्रम पूर्वक इस ग्रन्थ का प्रकाशन किया है। अत्यन्त व्यस्त होते हुए भी
, स्वय प्रूफ रीडिंग का उत्तर दायित्व भी वहन किया है। यह सब उनकी उदारता
प्रतीक है।

दिपावली
१३—११—७४

विनयावनत
राधेश्याम शर्मा

विषय सूची

प्रथम अध्याय

गुप्तजी के काव्य की पीठिका

राष्ट्रकवि श्री मैथिलीशरण गुप्त उन साहित्यिक विभूतियो मे से हैं जिन्होने ।नक हिन्दी-कविता को एक नियत रूप ही नही वरन् भारतीय सस्कृति को आधुनिक में भी फिट किया है। भाषा को प्रगति देने और रीतिकालीन परम्पराओ मे होकर को नवीन मार्ग पर लाने में इनको प्रमुख श्रेय मिला है। इन्होने आधुनिक कविता शैली और रूप सम्बन्धी नये प्रयोग करके प्राचीन और नई शैली का ऐसा मिश्रण ष। है जिसे देखकर प्राचीनतावादी इन्हे प्रगतिशील और प्रयोगवादी इन्हें आदर्शवादी बिना नही रह सकते हैं। कहने की आवश्यकता नही कि गुप्तजी ने इतिहास, सस्कृति, प्रेम, नैतिकता, साहित्य के साथ साथ गाधीवाद के प्रसार मे भी अनूठा योग दिया है। ,क विशेष योग रस की दिशा में भी है। जिस दिशा की ओर इनके काव्य-गुरु ने सके। था उसी दिशा में गुप्तजी ने प्रगति की।

खड़ी बोली काव्य के परिपार्श्व में —

शताब्दियो से हिन्दी-कविता भक्ति या शृंगार के रंग में रगी चली आरही थी। ~ल चुम्बन और आलिगन, रति और विलास, रोमाच और स्वेद, स्वकीया और परकीया रूढियो में जकडी हुई हिन्दी कविता करुण क्रन्दन कर रही थी। वह समाज से पर्याप्त ~ हो चली थी। भारतेन्दु तथा उनके कवि-मण्डल से रीतिकालीन परम्परा का पूर्ण- उन्मूलन न हो सका। भारतेन्दुजी ने रीतिकालीन परम्परा में कविता का किन्तु भक्ति कालीन भाव-परम्परा का नवोत्थान था। इसके साथ साथ वे नवयुग की के अग्रदूत कहे जा सकते हैं। भारतेन्दु काल में आकर हिन्दी-कविता ने एक प्रान्त का जीर्ण वस्त्र उतार कर लोक-भाषा, राष्ट्र-भाषा का परिधान धारण किया। न। बाह्य-रूप परिवर्तन कर लिया। इस दृष्टि से भारतेन्दु तथा द्विवेदी जी को हिन्दी वि का शकर और भगीरथ कहा जा सकता है। उसका अवतरण भारतेन्दु के समय मे किन्तु तत्पश्चात् वह द्विवेदी जी के पीछे पीछे चली।[1]

१ – डा० सुधीन्द्र, हिन्दी कविता मे युगान्तर, पृ० ४०–४१।

अंग्रेजी-साहित्य मे जिस प्रकार फ्रेंच रिवाल्यूशन (French Revolution) प्रसिद्ध है इसी प्रकार की एक क्रान्ति हिन्दी-काव्य क्षेत्र मे भी हुई, जिसका प्रभाव आचार्य द्विवेदी जी पर अमिट रूप से पडा। वे सुरम्य तथा रस से युक्त, विचित्र वर्णाभरणों से युक्त अलौकिक आनन्द प्रदान करने वाली कान्त कविता के लिए विकल हो गये।[1]

श्री मैथिलीशरण गुप्त ने महावीर प्रसाद के प्रसाद को स्वीकार किया। सियाराम शरण गुप्त, हरिऔध, श्रीधर पाठक, रामनरेश त्रिपाठी आदि कवि उनसे प्रभावित हुए। प्रसादजी, द्विवेदीजी से प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित नहीं हो पाए। कवि सुमित्रानन्दन पन्त, जो द्विवेदी युग के साध्य-तारक थे, मैथिलीशरण गुप्त की कविताओ से सम्मोहित होकर ही कवि-पथ पर प्रधावित हुए। हिन्दी के अति दीधकालीन इतिहास मे खड़ी बोली कविता की परम्परा का आरम्भ अमीर खुसरो की पहेलियो से ही माना जा सकता है।[2] कबीर ने खडी बोली को ग्रहण किया है। भूषण तथा लमुसमान कवियो की कविता में भी खडी बोली का क्षीण स्वर श्रवण-पथ में आता है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने खडी बोली मे "दशरथ विलाप" कविता लिखी है।[3]

भारतेन्दुजी खडी बोली का प्रयोग गद्य मे कर पाये। कविता में भी वे खडी बोली को अपना लेते किन्तु काल की कराल गति ने उन्हे अर्द्ध-विकसित अवस्था मे ही झपट लिया। द्विवेदी जी की खडी बोली की सर्व प्रथम कविता "बलीवर्द" है। खडी बोली में परिमार्जित भाषा का प्रयोग करने पर द्विवेदी जी ने अधिक बल दिया।

---

१ – आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी, सरस्वती जून १९०१ —

सुरम्यरूपे ! रसराशि-रंजिते ! विचित्र वर्णाभरणे ! कहां गई ?
अलौकिकानन्द विधायनी महा— कवीन्द्र-कान्ते ! कविते ! अहो कहां ?

२ – एक थाल मोती से भरा, सब के सिर पर ओंधा धरा।
चारो ओर वही थाली फिरे, मोती उससे एक न गिरे॥

— सकलित, हिन्दी कविता मे युगान्तर, पृ० ५०।

कद्दू काटि मृदग बनाया, नीबू काट मजीरा,
सात तरोई मगल गावे, नाचे बालम खीरा।

— सकलित हिन्दी कविता मे युगान्तर, पृ० ५०।

३ – आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, 'दशरथ विलाप' शीर्षक कविता से —

कहा हो ऐ हमारे राम प्यारे ?
किधर तुम छोड कर मुझको सिधारे !
बुढापे मे यह दुख भी देखना था।
इसी को देखने को मैं बचा था।

— सकलित, हिन्दी कविता में युगान्तर, पृ० ५२।

आगे चलकर पन्त, निराला, महादेवी वर्मा और श्रीधर पाठक आदि ने खड़ी बोली को अपनाया किन्तु वह मुक्तक-काव्य तक ही सीमित रही। हरिऔध तथा प्रसाद जी ने खडी बोली को प्रबन्ध-काव्य में स्थान दिया किन्तु उसका प्रचुर प्रयोग तथा सरल रूप नही आ पाया, इन दो विशेषताओ को लाने का श्रेय गुप्तजी को है। इन्होने खडी बोली में सरलता तथा तत्समता का ध्यान रखते हुए उसे प्रचुर रूप में प्रबन्ध काव्यो में स्थान प्रदान किया। अतः कहने की आवश्यकता नही कि खडी बोली मे कविता करने वाले कवियो में गुप्तजी का एक प्रमुख स्थान है।

संस्कृति की भूमिका पर —

अनेक विद्वानों ने सस्कृति की भिन्न भिन्न परिभाषाए दी हैं। दिनकर जी ने जीवन के तरीके को ही सस्कृति माना है। उनका कहना है कि असल मे सस्कृति जिन्दगी का एक तरीका है और यह तरीका सदियो मे जमा होकर उस समाज में छाया रहता है जिसमें हम जन्म लेते हैं।[1] 'कल्याण' हिन्दू-सस्कृति विशेषाक मे लौकिक, पारलौकिक, धार्मिक, आध्यात्मिक, आर्थिक, राजनैतिक अभ्युदय के उपयुक्त देहन्द्रिय, मन, बुद्धि और अहंकार आदि की भूषण-भूत् सम्यक् चेष्टाओ तथा हलचलो को ही सस्कृति कहा गया है।[2] आचार्य मंगलदेव शास्त्री आदर्शों की समष्टि को ही सस्कृति के नाम से अभिहित करते हैं। परन्तु इन सभी परिभाषाओ की अपेक्षा प० जवाहरलालजी नेहरू की परिभाषा अधिक समीचीन प्रतीत होती है। उनका मत है कि भारतीय संस्कृति की पीठिका प्रमुख दर्शन, रीति रिवाज, इतिहास, पुराण आदि के सामजस्य से निर्मित है। संस्कृति परम्परागत प्राप्त होती है, जिसको कोई भी संकट उखाड फेंक देने में समर्थ नही हो पाता है।[3]

उपर्युक्त सस्कृति-विषयक विचार-धाराओं से यह स्पष्ट है कि सस्कृति जातीय होती है, व्यक्तिगत नही। वह सभ्यता से सर्वथा पृथक् है। दर्शन, भक्ति, धर्म, नीति, साहित्य, रीति-रिवाज और पूर्वजो का चरित्र उसके अग प्रत्यग हैं।

आधुनिक-युग के कवियो मे हरिऔध जी, प्रसादजी तथा गुप्तजी को संस्कृति प्रिय कवि कहा जा सकता है। हरिऔध जी ने तो भारतीय सस्कृति के एक प्रमुख अग आदर्श-वाद का स्वीकरण अपने प्रिय प्रवास काव्य में बडे सुन्दर रूप मे किया है।[4] अत. सस्कृति के आंशिक रूप आदर्श की ओर उपाध्यायजी की ललक रही। प्रसादजी ने इतिहास का आधार लेकर प्राचीन रीति रिवाज तथा धर्म आदि का उल्लेख किया है। किन्तु प्रायः यह

---

१ — श्री दिनकर, सस्कृति के चार अध्याय, पृ० ६५३।

२ — स्वामी करपात्री जी, कल्याण, हिन्दू सस्कृति विशेषाक, पृ० ३५।

३ — प० जवाहर लाल नेहरु, डिस्कवरी आफ इण्डिया, पृ० ५५–५६।

४ — साकेत और प्रिय प्रवास की आदर्शगत तुलना, विद्यावाचस्पति श्रीवल्लभ शर्मा।

सब उनके नाटकों मे झलकता है। उनके प्रबन्ध काव्यो में तो भारतीय संस्कृति को व्यवस्थित रूप मे स्थान प्राप्त नही हो पाया है। 'कामायनी' में यत्र-तत्र संस्कृति के अंश मिल जाते हैं जहा श्रद्धा मनु को सब के सुख में सुखी तथा सबको सुखी बनाने का उपदेश देती है।[1] किसी अपरिचित व्यक्ति की तृप्ति के लिये अग्निहोत्र से अवशिष्ट अन्न को रख आना सस्कृति-प्रेम ही है,[2] क्योकि इससे हमारे पूर्वजो के स्वभाव का आभास मिलता है। उनके प्रबन्ध काव्यों मे सस्कृति की अपेक्षा आधुनिक-युगीन प्रवृत्तियो को अधिक प्रश्रय मिला है। नाटकों ने इस ओर अवश्य कदम बढ़ाया है। गुप्तजी ने संस्कृति के अधिकतम अंशा पर प्रकाश डाला है। किसी भी प्रबन्ध काव्य मे भारतीय-संस्कृति का कोई न कोई स्वरूप परिलक्षित हो ही जाता है।

संस्कृति का स्वरूप—

गुप्तजी गृहीत सस्कृति रामोपासक कालिदास और तुलसीदासजी से प्रभावित है। रामायण, महाभारत की कथाओ को लेकर चलने वाले गुप्तजी, संस्कृति-चित्रण में, पूर्णरूपेण सफल हुए हैं। अपने प्रबन्ध-काव्य के एक पात्र विशेष को भारतीय सस्कृति का परमोपासक बनाना चाहते है। 'जयभा त' का युधिष्ठिर तथा 'साकेत' के राम, लक्ष्मण, उर्मिला आदि इसी प्रकार के पात्र है। अत. सस्कृति-प्रिय कवियो मे गुप्त जी का प्रमुख स्थान है। इस सम्बन्ध मे आचार्य कमलाकान्त पाठक के ये विचार प्रेक्षणीय हैं —

" सागर मे जिस भाति विविध जल-धाराएं मिलकर एक रस हो जाती हैं, इसी प्रकार गुप्तजी के काव्य मे जाति, धर्म, भाषा, देश-सस्कृति मत और सिद्धान्त अथवा वाद और विवाद तथा अतीत और वर्तमान सभी की विभिन्नता विलीन होकर अभिन्न हो जाती है, क्योकि वे उदाराशयी, विश्व-मानवता के कवि हैं। लोक-कल्याण उनका उद्देश्य है। प्रेम, करुणा, शान्ति और व्यवस्था उनका प्रतिपाद्य है। "[3]

---

१ – श्री जयशकर प्रसा-, कामायनी, कर्म सर्ग, पृ० १५२।

औरों को हंसते देखो मनु,
हंसो और सुख पाओ।
अपने सुख को विस्तृत करलो,
सबको सुखी बनाओ।

२ – श्री जयशंकर प्रसाद, कामायनी, आशा सर्ग, पृ० ४२।

अग्नि होत्र अवशिष्ट अन्न कुछ,
कहीं दूर रख आते थे।
होगा इससे तृप्त अपरिचित,
समझ सहज सुख पाते थे।

३ – डा० कमला कान्त पाठक, मैथिलीशरण गुप्त व्यक्ति और कवि, पृ० १३०।

आदर्शवादी कवियों में गुप्तजी का स्थान —

आदर्शवाद की वृत्ति इस काल के कवियो को काव्य लिखने की प्रेरणा देती रही है। मुक्तक-काव्य मे तो केवल उद्बोधन और उपदेश मात्र दिये जा सकते हैं, परन्तु आख्यान के आवरण में उपदेश देना अधिक अभिनन्दनीय होता है क्योंकि पाठक पर व्यंजना से प्रभाव पडता है। आधुनिक युग के कवियो ने आदर्शवादी विचार-धारा को दोनों प्रकार के काव्य से अभिव्यक्त किया है। गुप्तजी ने आदर्शवादी विचारधारा को 'भारत-भारती' तथा 'साकेत' से ध्वनित किया है। 'भारत भारती' का आदर्श तथा 'साकेत' एव 'जयभारत' का आदर्श क्रमश. मुक्तक तथा प्रवन्ध से अभिव्यक्त हुआ है।

आदर्शवाद के विभाग कर लेने पर ठीक प्रकार से ज्ञात हो सकेगा कि किस कवि ने आदर्शवाद के किस क्षेत्र को कहा तक अपनाया है। आदर्श निम्न प्रकार के हो सकते हैं—

(अ) काव्यादर्श (ब) कलादर्श
(स) सामाजिक-आदर्श (द) प्रेमादर्श
(य) नैतिक- आदर्श (फ) राष्ट्रीय- आदर्श
(व) चारित्रिक- आदर्श।

स्थूल रूप मे दृष्टिपात किया जाय तो हरिऔध जी ने 'प्रिय-प्रवास' में चारित्रिक आदर्श की प्रतिष्ठापना की है। कृष्ण का आदर्श चरित्र प्रस्तुत करने में उनको अपने न्यायालय मे कंस, कालीनाग, व्योमासुर, हयासुर आदि विरोधी पक्ष के पात्रों को लाना पडा। आदर्शवाद की दृष्टि से उपाध्यायजी के 'चुभते चौपदे' नहीं भुलाए जा सकते। उनमें नीति का आदर्श उसी प्रकार निहित है जिस प्रकार रत्न मे आभा। सामाजिक आदर्श की प्रतिष्ठापना भी अत्यन्त सुन्दर ढ ग से हुई है। जाति, समाज, देश की उन्नति ही कवि का एक मात्र लक्ष्य रही है। 'प्रिय प्रवास' का नवम सर्ग नैतिक आदर्श से परिव्याप्त है। राधा का पवन-दूत आदर्शवादी दूत है। प्रे म का आदर्श प्रसादजी के 'प्रे म पथिक' में प्रतिष्ठित हैं परन्तु वहा वह शाब्दिक होने के कारण इतना प्रभाव उत्पन्न नहीं करता जितना राम नरेश त्रिपाठी के 'मिलन' और 'पथिक' मे प्रे म-प्रणय का आदर्श चरितार्थ हुआ है। द्विवेदी-कालीन कविता का परिष्कारवाद (Puritinism) प्रे म के रूप में व्यक्त होता है।

गुप्तजी ने अपने काव्य मे उपर्युक्त सभी आदर्श के पहलुओ को स्थान प्रदान किया है। गुप्तजी ने काव्य का आदर्श 'हिन्दू' काव्य की भूमिका में व्यक्त किया है —

"सुन्दर को शिवं अर्थात् जन-मंगल-दायक होना आवश्यक है यदि सौन्दर्य स्वयं एक बडा भारी गुण है तो गुण भी एक बडा भारी सौन्दर्य है, यही शिव काव्य का उद्देश्य है।"

कलादर्श —

'साकेत' के प्रथम सर्ग मे ही कविवर गुप्तजी ने काव्य का आदर्श हमारे सम प्रस्तुत किया है :—

हो रहा है जो जहा, सो हो रहा,
यदि वही हमने कहा तो क्या कहा ?
किन्तु होना चाहिए कब क्या, कहा,
व्यक्त करती है कला ही यह यहा । [1]

प्रेम का आदर्श तथा सामाजिक आदर्श आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की इन पक्तियो मे देखा जा सकता है जिन पर 'भारत-भारती' की पूर्ण छाप है —

सबके होकर रहो सहो सब की व्यथा ,
दुखिया होकर सुनो सभी की दुख-कथा ।
परहित मे रत हो, प्यार सबको करो,
जिसको देखो दुखी, उसी का दुख हरो ।
वसुधा बने कुटुम्ब प्रेम-धारा बहे,
मेरा तेरा भेद नही जग मे रहे । [2]

राष्ट्रीय-आदर्श और चारित्रिक-आदर्श को तो गुप्तजी ने अपने काव्य में सवत्र स्थान प्रदान किया है । इन दो आदर्शों के प्रति माना कवि की ललक है । यदि राष्ट्रीय आदर्श भावना का दर्शन करना है तो दादा श्यामसिह को इन पक्तिया को देखा जा सकता है —

वह जननी तो मुक्त हुई पर हाय विधाता,
रही बधी की बधो गऊ सो भारत माता । [3]

चारित्रिक-आदर्श का दर्शन करने के लिए 'जय भारत' को देखना पर्याप्त है । युधिष्ठिर का चारित्रिक-आदर्श अत्यधिक उन्नत है । 'साकेत' की तपस्विनी उर्मिला में जो चारित्रिक आदर्श दिखलाया गया है, वह बेजोड है । कन्दर्प के प्रति कही गई ये पंक्तिया प्रेक्षणीय हैं —

रूप - दर्प कन्दर्प, तुम्हे तो मेरे पति पर वारो ।
लो, यह मेरी चरण-धूलि उस रति के सिर पर धारो ।। [4]

---

१ – गुप्त जी – साकेत, प्रथम सर्ग, पृ० २१ ।
२ – 'प्रेम' शीर्षक कविता से संकलित ।
३ – गुप्त जी – अजित, पृ० ४३ ।
४ – गुप्त जी – साकेत, नवम् सर्ग, पृ० २६२ ।

वह तो अपने प्रियतम के सन्तोष मे ही सन्तोष का अनुभव-करने वाला भारतीय आदर्श-ललना का रूप हमारे समक्ष प्रस्तुत करती है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि आदर्शवादी कवियो मे गुप्तजी का प्रथम स्थान है। सबसे अधिक महत्वपूर्ण बात तो यह है कि उनके आदर्श अत्यन्त सहज, स्वाभाविक तथा सुलभ हैं।

गांधीवादी कवियों में गुप्त जी —

गान्धीजी का दर्शन हमको आत्म-त्याग, बलिदान, अहिंसा का पाठ पढ़ाता है। उसमे परोत्पीडन, हिंसा तथा असत्य को स्थान नही। अछूतोद्धार की भावना, दीनो के प्रति प्रेम गान्धीजी के प्रिय आदर्श रहे। इनको गुप्तजी के साथ-साथ आधुनिक कवि किस प्रकार अपना पाए है यह द्रष्टव्य है। उपन्यास के क्षेत्र में प्रेमचन्दजी ने गान्धीवाद को प्रश्रय दिया। प्रसाद, निराला एव दिनकर आदि आधुनिक-कवि गान्धीवादी विचारधाराओ को उस सीमा तक नही अपना पाए, जिस सीमा तक गुप्तजी। गान्धीवादी विचार-धाराए उनके काव्यो में मुखर हो उठी हैं। इसका एक मात्र कारण यह भी है कि वे अपने व्यक्तिगत जीवन मे भी गान्धीजी के सपर्क में आते रहे। बापू के दिवगत हो जाने पर लिखित 'अाजलि और अर्घ्य' रचना यदि एक ओर उनके कृत्यो का वर्णन करती है तो दूसरी ओर अश्रु विमोचन करती हुई बापू की दिवगत आत्मा को शान्ति का सन्देश देती है। गान्धीजी की सहानुभूति अछूतो, कृषको तथा नारियो के प्रति विशेष रूप से रही, अतएव गुप्तजी ने भी अपनी सहानुभूति का पात्र इन सभी को बनाया।

कृषको के जीवन की कथा को लेकर यदि प्रेमचन्द ने 'गोदान' का प्रणयन किया तो गुप्तजी ने 'किसान' काव्य का जिसमे किसान के जीवन पर आलोचनात्मक दृष्टि से प्रकाश डाला गया है, जैसा कि निम्नलिखित पक्तियो से अभिहित हाता है —

> जिस खेतो से मनुज मात्र अब भी जीते हैं,
> उसके कर्त्ता हमी यहाँ आसू पाते हैं।
> शिक्षा को हम और हमे शिक्षा रोती है,
> पूरी बस वह घास खोदने में होती है।
> हा हा खाना और सर्वदा आसू पीना,
> नही चाहिये नाथ! हमे अब ऐसा जीना।[1]

गुप्तजी ने नारियो के प्रति सम्मान की भावना भी अभिव्यक्त की। उन्होंने नारी को अपने काव्य का विषय बनाकर "यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता" की भावना की प्रतिष्ठा की। नारी अवस्था का चित्रण इन पक्तियो से किया गया है —

> अबला–जीवन, हाय तुम्हारी यही कहानी।
> आचल मे है दूध और आखो में पानी॥[2]

---

१ – गुप्त जी – किसान, पृ० ५।
२ – गुप्त जी – यशोधरा, पृ० ४७।

किन्तु उस अबला नारी को इन शब्दो मे आश्वासन देकर उत्साह मे अभिवृद्धि की है :—

दीन न हो गोपे, सुनो, हीन नही नारी कभी।
भूत दया मूर्ति वह मन से शरीर से ॥ [१]

अहिंसा और त्याग की अभिव्यक्ति तो गुप्तजी के काव्य मे सर्वत्र किसी न किसी रूप में प्राप्त हो ही जाती है। गान्धीजी की अहिंसात्मक राजनीति के उद्घोष के साथ साथ गुप्तजी ने देश का भी जय-गान प्रस्तुत किया —

हमारी असि न रुधिर रत हो,
न कोई कभी हताहत हो।
शक्ति से शक्ति न अवनत हो,
भक्तिवश जगत एक मत हो।
वैरियो का वैर क्षय हो,
दया-मय भारत की जय हो। [२]

अतएव स्पष्ट है कि आधुनिक कवियो में से किसी ने गान्धीवादी विचारो को इतनी व्यापकता से अपने काव्य में अभिव्यक्त नही किया है। गान्धीवादी विचारधारा वाले कवियों में गुप्तजी महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं।

राम-भक्त कवियों में —

आधुनिक युग के रामभक्त-कवियो में 'हरिऔध' तथा गुप्त जी को प्रमुख रूप से लिया जा सकता है। यद्यपि गोस्वामी जी तथा केशव को भी राम भक्त कवियो मे गिना जा सकता है किन्तु गुप्त जी के समकालीन न होने के कारण वे प्रस्तुत विषय के क्षेत्र से बाहर हैं। 'हरिऔध' जी ने 'बैदेही बनवास' काव्य में राम कथा को ग्रहण किया है। उसमें समस्त राम-काव्य की झलक नही मिलती है। गुप्तजी की वृत्ति राम-काव्य मे अधिक रमी है। इसका एक मात्र कारण है कि कवि के पिता राम के परमोपासक थे। परिवार के सभी सदस्य वैष्णव-मत के अन्तर्गत राम को आराध्य मानते थे। परिणामत गुप्तजी परिवार के प्रभाव से अछूते नही रह पाए। उन्होने अपने काव्यो के आरम्भ मे मंगलाचरण के रूप में राम तथा सीता की वन्दना प्रस्तुत की है गुप्तजी के मतानुसार तो राम कथा ऐसी अपार है कि उसमे नवीनता का अन्त नही। जितने अधिक उसमें गोते लगाए जावें उतनी ही नवीन उद्भावनाएं आ जाती हैं। तभी तो 'साकेत' के मुख पृष्ठ पर ही गुप्तजी ने यह लिख दिया हैं —

---

१ – गुप्त जी – यशोधरा, पृ० १४५।
२ – भारत की जय से संकलित।

राम तुम्हारा वृत्त स्वयं ही काव्य है,
कोई कवि बन जाय सहज सम्भाव्य है। [1]

गुप्तजी से पूर्व राम-कथा को लेकर प्रमुख रूप से चलने वाले गोस्वामी तुलसी दास हैं। अत. प्रेक्षणीय यह है कि गुप्तजी ने तुलसी गृहीत कथा को ज्यों की त्यो स्वीकार किया है अथवा उसमें कुछ परिवर्तन प्रस्तुत किये हैं। गोस्वामी जी ने अपने रामचरित - मानस में उर्मिला का भुला दिया तथा कैकेयी के चरित्र को इतना गिरा दिया कि उसके नाम से 'मानस' का पाठक जलने लगता है किन्तु गुप्तजी के 'साकेत' के पाठक के समक्ष ऐसी बात नही आती। उन्होने राम के प्रति आदर्श तथा पूज्य भावना के संचार के साथ, उर्मिला के आदर्श चरित्र का भी प्रतिष्ठा की है। यद्यपि इस प्रकार के प्रयत्न में 'साकेत' का कलेवर महाकाव्य की दृष्टि से डगमगाता सा प्रतीत होता है किन्तु शिथिल मापदण्डो से नापने पर वह सध जाता है। साकेत मे उर्मिला तथा राम दोनो को प्रमुख रूप मे प्रस्तुत करके गुप्तजी ने पाठको के लिए समस्या तथा आलोचको के लिए क्षेत्र विस्तीर्ण किया है। यह निस्सन्देह कवि की नई देन है। गोस्वामीजी की कैकेयी स्वार्थवश राम का निर्वासन करती है और किसी भी अवस्था पर पहुच कर उसके हृदय का कालुष्य निवारण नही हो पाता है। परन्तु 'साकेत' की कैकेयी की मति पर मन्थरा के कुचक्रो का पर्दा पड जाता है और चित्रकूट मे राम को तपस्वी वेष में देख कर ज्ञान के प्रकाश से वह पर्दा हट जाता है वह भाव विह्वला होकर राम से घर लौट चलने का आग्रह करती है। जब राम लौटना पसन्द नही करते तब वह भरत के सम्बन्ध से राम को लौट जाने को वाध्य करती है

हाँ, जनकर भी मैंने न भरत को जाना।
सब सुनले तुमने स्वयं अभी यह माना।।
यह सच है तो फिर लौट चलो घर भैया।
अपराधिन मैं हूँ तात, तुम्हारी मैया। [2]

इस प्रकार यह देखा जा सकता है कि उर्मिला का महत्व प्रतिष्ठापन तथा कैकेयी का चरित-तरिष्करण गुप्तजी की मौलिकता के द्योतक हैं। रामकथा को लेकर चलने वाले आधुनिक कवियो में यदि गुप्तजी को सर्वप्रथम स्थान प्रदान किया जाय तो समीचीन ही होगा।

रीतिकालीन परम्परा में—

रीतिकालीन-काव्य पर दृष्टिपात करते समय दो बातें ध्यान मे आती हैं— एक तो रीतिकालीन-काव्य की भाषा और दूसरा काव्य की कथावस्तु का मूलाधार। रीति-

---

१ – गुप्त जी – साकेत, मुख पृष्ठ।
२ – वही, पृ० २२६।

कालीन-काव्य की भाषा प्राय: ब्रज थी तथा काव्य-विषय स्त्री बन बैठी थी। शृंगार का अधिक वर्णन मिलने के कारण बहुत से विद्वान् तो उसको रीतिकाल के स्थान पर शृंगार काल से अभिहित करने लगे हैं। सूरदास के कृष्ण तथा गोपिकाओं के सात्विक प्रेम में विगलन आ गया था तथा वह प्रेम दर-दर की ठोकरे खाता हुआ कालुष्य-मय हो गया था। रीति-काल समाप्त होते होते आधुनिक काल पर भी अपना प्रभाव छोड गया। रीति-कालीन काव्य की भाषा तथा विषय मे आधुनिक काल के प्रथम चरण तक कोई विशेष परिवर्तन दिखाई नही दिया।

सर्वप्रथम आधुनिक-कवि भारतेन्दु ने आधुनिक-काव्य की नीव डाली। राष्ट्र-प्रेम, निर्धनता के चित्रण आदि को काव्य मे स्थान देकर रीतिकालीन काव्य के विषय का परिवर्तन तो कर दिया किन्तु ब्रज-भाषा काव्य-भाषा न बन सकी, वह गद्य में स्थान पा चुकी थी। हरिऔधजी ने जहा कृष्ण को पुन पूज्य रूप प्रदान किया वहा रीतिकालीन प्रभाव से वे अछूते न रह सके। राधा का विरह वर्णन करते समय सेनापति क 'चम्पक' तथा 'कचनार' उनके मस्तिष्क मे विद्यमान थे। प्रसाद जी ने रीति-कालीन नारी को कामुकता के पार्श्व से निकाल कर अपने काव्य मे स्थान दिया। उनकी श्रद्धा त्यागमयी, क्षमाशीला तथा करुणा का प्रतिरूप बनकर प्रकट हुई। शृंगार का वर्णन किया है किन्तु अश्लीलता की गन्ध का निवारण किया है। फिर भी सूक्ष्म दृष्टि डालने पर उसमे रीति-कालीन शृंगार का लक्षण मिलना स्वाभाविक है।[1] इधर पतजी ने रीति-कालीन स्त्री को प्रकृति के परिवेश में रख कर परखने का प्रयास किया। गुप्तजी ने नारी को अपने काव्य का विषय बनाया किन्तु उसके अलको मे न उलझ कर उसक उदात्त चरित्र में उलझने का प्रयास किया। जहा उर्मिला के आदर्श-चरित्र को प्रस्तुत किया है वहा उसक विरह-गीत रीतिकाल के प्रभाव से मुक्त भी नही कहे जा सकते, चाहे गीति तत्व तथा भाषा की दृष्टि से वे भले ही पृथक् हो किन्तु प्रकृति का उद्दीपन रूप मे चित्रण ठीक उसी प्रकार हुआ, जिस प्रकार रीतिकाल में। उर्मिला के पीले पड जाने की समता पतझर से करना ठीक उसी प्रकार मे है, जिस प्रकार नागमती का पति के विरह में भ्रमर जैसा काला बतलाना। यह सत्य है कि कवि ने शृंगार का वर्णन अत्यन्त गम्भीरता से किया है। 'साकेत' के नवम सर्ग के गीतो का माधुर्य किसी भी प्रकार से रीतिकालीन मुक्तको से कम नही है। 'झकार' मे संग्रहीत अनेक कविताओ में छायावाद तो मिलता ही है साथ

---

१ — प्रसाद, कामायनी, चिन्ता सर्ग, पृ० २०—

अब न कपोलों पर छाया सी
पड़ती मुख की सुरभित भाप,
भुज मूलो मे शिथिल वसन की
व्यस्त न होती है अब माप।

ही साथ रीतिकालीन गध भी आ ही जाती है। रीतिकालीन कवियो की भाति लक्षण-ग्रन्थ तो किसी कवि ने आधुनिक-युग में लिखे नही है, हा कभी कभी शृगार के वर्णन करते समय परिवर्तित विषय में भी रीतिकाल की चमक लाने की चेष्टा की है और इस प्रकार के कविया मे गुप्तजी किसी से पीछे नही रह पाए हैं।

नवीनता प्रेमी कवियों में गुप्तजी का स्थान—

गुप्तजी प्राचीनता के साथ साथ नवीनता के प्रेमी हैं। निराला की कविता-कामिनी व्याकरण के बधनो को तोडकर चली है। उसी प्रकार पन्त ने भी तुक की कोई चिन्ता नही की है। हरिऔध जी ने 'प्रिय-प्रवास' मे सस्कृत के छन्दो के परिवेश मे अतुकान्त कविता का रूप स्थापित किया है। गुप्तजी भी इन नवीन प्रयोगो मे विमुक्त न रह सके। यदि ध्यान पूर्वक देखा जाय तो जहा गुप्तजी तुक के शिकजे से बाहर हो गए हैं, वहा उनका कवि स्वरूप चमक उठा है। उदाहरणार्थ 'सिद्धराज' के कतिपय स्थलो पर 'यशोधरा' तथा 'सिद्धराज' के निर्माता का अन्तर स्पष्ट हो जाता है। प्रसादजी की भाति गुप्तजी ने भी काव्य में नवीन भावो, नवीन छन्दो, नवीन प्रतीको को स्थान दिया है यद्यपि प्रसाद से अधिक वे सफल तो नही हुए हैं किन्तु फिर भी इन नवीन प्रवृत्तियो के प्रयोग मे असफल भी नही कहे जा सकते। छायावादी तथा रहस्यवादी कविताएं उनके कविता सग्रहो मे भलीभाति देखी जा सकती हैं, किन्तु इन काव्यो की प्रवृत्तियों मे गुप्तजी की वृत्ति कम रमी है। चरित्र के क्षेत्र मे नवीनता लाने के विचार से गुप्तजी अधिक सफलीभूत हुए हैं। आधुनिक-युगीन विचारधाराओ को वे अपने पौराणिक तथा ऐतिहासिक कथाओं पर आधारित काव्यो मे भली-भाति प्रदर्शित कर पाए हैं। करुणा, सहानुभूति, शृगार का चित्रण, राज्य-व्यवस्था, अहिसा, सत्याग्रह, विश्व-बन्धुत्व और मानवतावाद आदि का सफल चित्रण उनकी कृतियो मे प्राप्त हो जाता है इनकी सबसे बडी विशेषता यह है कि वे प्राचीन के प्रति पूज्यभाव की रक्षा करते हुए भी नवीन के प्रति उत्साह प्रदर्शित करने मे समर्थ सिद्ध हुए हैं, ऐसी आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की भी मान्यता है।[1]

राष्ट्रवादी तथा देश भक्त कवियों में—

राष्ट्रीयता के इस प्रगतिशील स्वरूप में उन तत्वो का समावेश होता है जो जन-जीवन के साथ साथ चलते है। राष्ट्रवादी विचारधारा के दो पक्ष किए जा सकते हैं—सास्कृतिक और राजनैतिक।

(क) सास्कृतिक-पक्ष—

इस प्रकार की कविताओ में उन तत्वो का समावेश है जो राष्ट्र के विकासशील सास्कृतिक रूप का सगठन करते हैं। इस पक्ष में राष्ट्र के अतीत का गौरव-गान तथा

---

१ – आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० ६१६–६१७।

वर्तमान के प्रति क्षोभ और आक्रोश की भावना होती है। 'भारत-भारती' वस्तुतः भारतीय गौरव-गरिमा का उदात्त चलचित्र है। आर्य संस्कृति तथा भारतीय सभ्यता के प्रति कवि की भावना अविचल है और अजस्र रूप से इस रचना में प्रवाहित हुई है। 'भारत-भारती' ने अतीत-दर्शन का एक वातावरण प्रस्तुत किया और वर्तमान के प्रति क्षोभ तथा आक्रोश का भाव व्यक्त भी किया है—

हम कौन थे, क्या होगये हैं ?
और क्या होगे अभी ?[1]

क्षोभ तथा आक्रोश के साथ साथ प्रोत्साहन भी भारत-भारती मे निहित है। गुप्तजी कहते हैं—

अन्यायियो का राज्य भी क्या अचल रह सकता कभी,
आखिर ! हुए अंग्रेज शासक, राज्य है जिनका अभी।[2]

(ख) राजनीतिक-पक्ष—

राजनीतिक राष्ट्रवादी कविता मे जीवन का स्पन्दन देने वाले तत्वो का निरुपण किया जाता है। इस प्रकार कविता मे राष्ट्रीय-जीवन के स्पन्दन के साथ राष्ट्र-मुक्ति के मार्ग की आशा के प्रति विद्रोह की भावना भी परिलक्षित होती है। इस प्रकार की कविता करने वालो मे सुभद्राकुमारी चौहान, राय देवी प्रसाद-'पूर्ण' का नाम गिनाया जा सकता है। इस प्रकार की कविता के उदाहरण मे निम्न पक्तिया देखी जा सकती हैं —

चिरजीवें सम्राट् होयं जय के अधिकारी !
होवे प्रजा-समूह मधुर सम्पन्न सुखारी। —**सुभद्रा कुवरि चौहान**[3]

और भी—

सच्ची सहित सुकर्म, देश की भक्ति चाहिए।
पूर्ण भक्ति के लिए, पूर्ण आसक्ति चाहिए। —**राय देवी प्रसाद 'पूर्ण'**[4]

बाबू जयशकर प्रसाद जी ने भी राष्ट्रीयता के सास्कृतिक पक्ष को अपनाया। उनके नाटक इस ओर अधिक गतिशील दिखाई देते हैं। यद्यपि 'भारतेन्दु के भारत-दुर्दशा' नाटक ने भारतीयो के हृदय मे तहलका मचा दिया था किन्तु केवल एक ही कवि की वाणी एक साथ परिवर्तन प्रस्तुत नही कर सकती। इस राष्ट्रीय भावना का स्रोत

---

१ – गुप्तजी—भारत-भारती पृ० १५६।
२ – वही भारत-भारती, पृ० १६५।
३ – हिन्दी कविता मे युगान्तर पृ० १६६।
४ – वही, पृ० १६५।

'भारत–भारती' से निकल कर उसके अन्त मे ही विलीन नही होगया अपितु अन्य रचनाओ में भी यह अबाधित गति से बहता हुआ दिखाई देता है। उदाहरण के लिये 'अजित', 'रग मे भग' तथा 'सिद्धराज' जैसी रचनाओं को लिया जा सकता। 'भारत-भारती' ने जो कीर्ति गुप्तजी को दी सम्भवत साकेत भी उतनी कीर्ति देने मे असमर्थ रहा है। सबसे बडी विशेषता यह है कि 'भारत-भारती' का विषय तत्कालीन परिस्थति से चयन किया गया था। उस समय एक जागरण फैलाने वाली कृति की आवश्यकता थी। अतएव राष्ट्रवादी-विचारधारा वाले कवियो में गुप्तजी का एक प्रमुख स्थान है।

प्रयोगवादी कवियों में—

हिन्दी-काव्य ने आधुनिक-युग में भावो तथा शैलियो के क्षेत्र में काफी करवटें बदली हैं। जिस प्रकार छायावाद, रहस्यवाद को शैली के रूप मे ग्रहण किया गया है, ठीक उसी प्रकार प्रयोगवाद को भी शैलियो मे स्थान प्राप्त हुआ हैं। आधुनिक कवि प्रयोगवादी होता जा रहा हैं। नवीनता के प्रति आकर्षण बढता जा रहा है। तभी तो प्रसादजी की प्रकृति बासे फुलो से शृगार नही करती है। तार की भाषा का प्रयोग, 'साकेतिकता' सदीप–प्रियता' सुन्दर शैली का समन्वित रूप प्रयोगवाद सज्ञा पाता है। प्रयोगवाद केवल कविता तक नही अपितु गद्य-काव्य को भी अध्यवसित किए हुए है। दो पक्तियो के गीत काव्य लिखे जा रहे हैं। कहानियो का कलेवर लघुतम किया जा रहा है बुद्धि और भावना के सयोग से इस शैली को भी ग्रहण किया जा रहा है। इस क्षेत्र में निराला, पन्त, महादेवी वर्मा, डा० रामकुमार वर्मा, प्रसाद तथा गुप्तजी को लिया जा सकता है। पन्त ने छायावादी शैली अपनाई तो निराला ने साकेतिकता को अपनाया इधर महादेवी वर्मा ने सक्षेप-प्रियता पर बल दिया। प्रसादजी ने प्रबन्ध काव्य मे मुक्तको का प्रयोग करके एक नई शैली को जन्म दिया। गुप्तजी ने 'साकेत' मे गीतो को स्थान दिया किन्तु कामायनी की अपेक्षा गीत साकेत के कलेवर में कम बैठ पाए हैं। जिस प्रकार धर्मवीर भारती की 'कनु प्रिया' तथा डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी की बाणभट्ट की आत्म कथा, मे साहित्यिक प्रयोग बतलाये जाते हैं वैसे ही 'यशोधरा' किसी से पीछे नही रहती। इस रचना के स्वरूप निर्धारण मे वे ही समस्याएं आती हैं जो उपर्युक्त दोनो रचनाओ के स्वरूप निर्धारण में, 'झकार' मे भी गुप्तजी के साहित्यिक प्रयोग के दर्शन किए जा सकते हैं। अनेक प्रयोगो के बावजूद भी वे साकेतिकता तथा तार की भाषा का प्रयोग नही कर पाए हैं।

प्रबन्धकार तथा मुक्तककारों में—

आदिकाल तथा भक्तिकाल मे प्रबन्ध काव्य लेखन की प्रवृति को प्रोत्साहन मिला और प्रचुर मात्रा में प्रबन्ध काव्यो का प्रणयन हुआ। किन्तु रीतिकाल मे प्रबन्ध-

काव्यो का स्थान मुक्तक काव्यो ने लिया। आधुनिक काल मे भी यदि गुप्तजी के समस्त प्रबन्ध काव्यो को निकाल कर देखा जाय तो प्रबन्ध काव्यो की सख्या अधिक नही है। हरिऔधजी ने 'प्रिय-प्रवास' तथा कामायनीकार ने 'कामायनी' एव दिनकर जी ने 'उर्वशी देकर इस कमी को पूर्ण करने का प्रयास किया। किन्तु हिन्दी खडी बोली का सर्व ग्राह्य रूप इन रचनाओ मे कम ही मिलता है। गुप्तजी ने साहित्य को लगभग २३ प्रबन्ध-काव्य दिये, जिनमे दो महाकाव्य हैं। प्रबन्ध काव्यो की इतनी बडी सख्या न तो प्रसाद तथा हरिऔध जी दे पाए है और न अन्य कोई आधुनिक कवि ही दे पाया है। अतएव प्रबन्धकार के दृष्टिकोण से गुप्तजी की समता का कोई कवि नही है। यह हो सकता है कि प्रसादजी की 'कामायनी' या 'उर्वशी' काव्य के मापदण्डो से नापने पर गुप्तजी के प्रबन्धा से अधिक खरो उतरें किन्तु संख्या के दृष्टिकोण से प्रसाद जी को चुप हो जाना पड जायगा। एक प्रबन्धकार है तो दूसरा प्रमुख रूप से नाटक-कार।

गुप्तजी प्रमुख रूप से प्रबन्धकार हैं तथा गौण रूप से मुक्तक-कार। यो तो उन्होने नाटक, प्रहसन, रूपक और चम्पू आदि का भी सृजन किया है किन्तु वृत्ति प्राय' प्रबन्ध काव्यो मे ही रमी है। मुक्तक काव्य के क्षेत्र मे भी वे इतने पिछडे दिखाई नही देते है। यह सत्य है कि उनके मुक्तक तथा गीतो मे इतनी उत्कृष्टता नही आ पाई है जितनी निराला, पन्त, प्रसाद, महादेवी वर्मा के गीतो तथा मुक्तको मे। किन्तु फिर भी जो कुछ गुप्तजी ने दिया उससे हिन्दी के सहृदय पाठक सन्तुष्ट है।

नारी के समर्थकों में (विशेषतः उपेक्षिताओं के सम्बन्ध से)—

नारी के विषय मे आधुनिक युग में पर्याप्त लिखा गया है। लगभग प्रत्येक आधुनिक कवि ने नारी के विषय मे किसी न किसी रूप मे कलम चलाई है। यह कोई नई वात नही है क्य कि नारी तो हिन्दी के आदिकाल से रीतिकाल तक काव्य का विषय बनती आई है। भक्ति-काल में नारी चित्रण कम हुआ, किन्तु उदात्तता से रीतिकाल मे वह कामुक-व्यक्तियो की कन्दुक मात्र रह गई। आधुनिक काल मे नारी के प्रति सहानुभूति तथा करुणा का भाव जागृत हो उठा। टूटी खटिया तथा लहगे में सिकुड कर सोने वाली तथा इलाहाबाद के मार्ग मे पत्थर तोडती हुई नारियो के प्रति कवियो की दृष्टि गई। पन्तजी ने नारी को सौन्दर्य के तराजू में रख कर तोला, पन्तजी के काव्य पर स्त्रैणता का आरोप लगाया जाता है किन्तु कवि इनकी चिन्ता नही करता है। प्रसादजी ने नारी के गौरवमय रूप को अपनाया। उन्होने नारी को श्रद्धा के रूप मे देखा तथा मानव जीवन के सुन्दरतल मे पीयूप-स्रोत सी बहने वाली बनने की कामना प्रकट की। बच्चन ने तो नारी को जगत की धात्री मान लिया। उनका तो ऐसा विचार है कि यदि नारी न हो तो मनुष्य इस

संसार रूपी घट को भग्न करके चला जाता । जगत-घट के ऊपर लिप्त नारी के रूप के रस का आस्वादन करने के लिए वह प्रतीक्षा करता रहता है ।[1]

गुप्तजी एव हरिऔधजी ने प्राय उपेक्षिताओ को अपने काव्य मे स्थान दिया । 'प्रिय-प्रवास' मे चित्रित राधा को यदि रीतिकाल ने नही भुलाया तो उसके प्रेमी कृष्ण ने तो भुला दिया था अत वह हरिऔधजी की सहानुभूति की पात्री बन सकी । इधर गुप्तजी ने 'यशोधरा' रचना मे नारी-जीवन की व्याख्या की—

अबला जीवन हाय ! तुम्हारी करुण कहानी,
आचल मे है दूध और आखो मे पानी ।[2]

यशोधरा जिसको बौद्ध-साहित्य ने भुला दिया, 'यशोधरा' काव्य मे पति के लिये रोती है तो राहुल के लिए हसती है । एक ओर प्रेषित पति का है तो तो दूसरी ओर आदर्श मा है । वह राहुल को दूध से पालती है तो प्रीतम की प्रेमबल्लरी का अश्रुओ के जल से सीचती है ।

कवीन्द्र रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने 'काव्य की उपेक्षिताए' लेख मे बाल्मीकि और भवभूति की उर्मिला के प्रति, कालीदास की प्रियम्वदा और अनुसूया के प्रति, बाण की पत्र-लेखा के प्रति, की गई निर्मम-उपेक्षा पर दुख प्रकट किया था । उसी प्रेरणा से श्री भुजग भूषण भट्टाचार्य ने भी 'सरस्वती' पत्रिका में कवियो की उर्मिला विषयक उदासीनता की ओर इगित किया था । गुप्तजी इन दोनो ही व्यक्तियो से अधिक प्रभावित हुए तथा 'उर्मिला' को उजागर बनाया, जिससे यशोधरा, सैरन्ध्री, विष्णुप्रिया को भी उजागर करने की प्रेरणा मिली । आधुनिक युग के कवियो मे गुप्तजी का उपेक्षिताओ के साथ सहानुभूति प्रदर्शित करने मे सर्व प्रथम स्थान कहा जा सकता है, इसमें कोई सन्देह नही है ।

निष्कर्ष—

खडी बोली के प्रबन्ध काव्यो मे प्रयोगार्थ बनाने में गुप्तजी का सर्व प्रथम स्थान है । काव्य में विशद सस्कृति के चित्रण में गुप्तजी सर्वोत्कृष्ट हैं । यद्यपि प्रसादजी ने भी

---

१ – बच्चन की नारी—
जगत घट को विष से कर पूर्ण, किया जिन हाथो ने तैयार ।
लगाया उसके मुख पर नारि, तुम्हारे अधरो का मधुसार ।
नही तो कब का देता फोड, मनुज विषयो को ठोकर मार ।
इसी मधु का लेने को स्वाद, हलाहल पी जाता ससार ।

२ – गुप्तजी—यशोधरा, पृ० ४७ ।

महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त किया है किन्तु इतना व्यापकत्व नही जितना गुप्तजी के संस्कृति-चित्रण मे है। आदर्शवाद के दृष्टिकोण मे वे हरिऔध तथा प्रसादजी की कोटि मे रखे जा सकते हैं। गान्धीवादी कवियो में गुप्तजी का सर्वोपरि स्थान है। रामभक्त-कवियो में उनकी तुलना मे किसी भी आधुनिक कवि को नही रखा जा सकता है। रीतिकालीन परम्परा मे गुप्तजी का स्थान, भारतेन्दु, पन्त और प्रसाद के पीछे रखा जा सकता है। नवीनता प्रेमी कवियो मे उनका महत्वपूर्ण स्थान है राष्ट्रवादी या देश भक्त कवियो में उनका स्थान प्रथम है। प्रयोगवादी कवियो मे गुप्तजी को पन्त, प्रसाद, निराला के पीछे बिठाया जा सकता है। प्रबन्धकार कवि की दृष्टि से उनकी तुलना में कोई आधुनिक-कवि नही टिक पाता है। मुक्तक-कार कवियो मे गुप्तजी का चतुर्थ स्थान माना जा सकता है। उपेक्षिताओ के सम्बन्ध मे काव्य रचना करने वालो में वे बेजाड हैं।

जो भी हो, गुप्तजी को राष्ट्र कवि के साथ साथ प्रतिनिधि कवि होने का सौभाग्य भी प्राप्त है जिसके कारण उनके स्थान को भलीभाति आधुनिक कवियो मे उच्च कहा जा सकता है। उनकी रचनाएं जैसी हैं वैसी हैं किन्तु वे हिन्दी-साहित्य की अनुपम निधि हैं, इसमे दो मत नही है। चाहे उनमें भले ही चटक-मटक न हो किन्तु जीवन के शाश्वत-तत्वो मे रिक्त नही कहा जा सकता। यही कारण है कि गुप्तजी का काव्य सबसे अधिक पढा जाता है। इस विषय में पं० गिरिजा दत्त शुक्ल 'गिरीश' की गुप्तजी के विषय में कही गई ये पंक्तिया प्रेक्षणीय हैं—

"प्राचीन विचार के साहित्य-सेवी उनकी रचनाओं मे मंगलाचरण आदि के समावेश के रूप मे अपनी प्रियवस्तु पा जाते हैं। द्विवेदी-स्कूल के कवि उन्हे अपने नेता के रूप मे ग्रहण करते है। छायावादी कवि भी उनमे अपने अनुकूल कु विशेषताए और प्रवृत्तिया ढूंढ लेते हैं। इस प्रकार वर्तनान समय के सभी दलो क अल्पाधिक मात्रा मे, उनसे सन्तोष प्राप्त हो जाता है। पाठको की जितनं बडी सख्या उन्हे प्राप्त है उतनी बडी संख्या प्राप्त करने का सौभाग्य अन्य किर्स भी जीवित हिन्दी-कवि का उपलब्ध नही है।"[1]

---

१ – पं० गिरिजादत्त शुक्ल 'गिरीश', गुप्तजी की काव्य धारा, पृं० २६० ।

द्वितीय अध्याय

गुप्त जी के प्रबन्ध काव्य

गुप्तजी की काव्य-रचनाओं की संख्या लगभग ४० है, जिनमें प्रबन्ध-काव्य, मुक्तक काव्य, पद्य-सग्रह, रूपक, नाटक, चम्पू, अनूदित आदि अनेक प्रकार की रचनाएं सम्मिलित हैं। 'पद्य-प्रबन्ध', 'भारत-भारती', 'आजलि और अर्घ्य', 'हिन्दू', 'वैतालिक', 'मगलघट', 'स्वदेश गीत', 'झकार', 'प्रदक्षिणा', 'कुणाल-गीत' और 'विश्व वेदना' रचनाएं मुक्तक-काव्य तथा पद्य संग्रहों की श्रेणी मे आती हैं। रूपक तथा नाटकों मे 'तिलोत्तमा', 'चन्द्रहास', 'त्रिपथगा', 'पृथ्वी-पुत्र' और 'अनघ' आदि का नाम गिनाया जा सकता है। 'मेघनाद-वध', 'पत्रावली' एव ऊमर खैयाम की रुबाइयों के हिन्दी-अनुवाद सग्रह अनूदित रचनाए हैं। 'साकेत', 'जयभारत', 'जयद्रथ-वध', 'सैरन्ध्री', 'वन-वैभव', 'वक सहार', 'पचवटी', शक्ति', 'हिडिम्बा', 'शकुन्तला', 'युद्ध', 'नहुष', विकटभट', 'यशोधरा', 'रंग मे भग', 'सिद्धराज', 'गुरुकुल', 'गुरु तेग बहादुर', 'अर्जन और विसर्जन', 'काबा और कर्बला', 'विष्णुप्रिया', 'अजित', और किसान' आदि रचनाएं प्रबन्ध काव्य की कोटि में आती हैं। 'द्वापर' को कतिपय विद्वान प्रबन्ध-काव्य मानते हैं किन्तु डा० कमला कान्त पाठक को उसका प्रबन्धत्व स्वीकार नही है। मूलत यह कृति प्रबन्ध-काव्य की कोटि मे नही आती है। गुप्तजी द्वारा प्रतिपादित एक 'उर्मिला' प्रबन्ध काव्य भी मिलने का सकेत मिला है किन्तु वह काव्य अधूरा है। उनकी एक प्रबन्धात्मक रचना 'नल-दमयन्ती' कही खो गई है अत उपर्युक्त दोनो रचनाओं से सम्बन्धित विवेचना प्रस्तुत नही की जा सकती क्योंकि काव्य की परख के लिए काव्य का होना तथा पूर्ण होना आवश्यक है। 'यशोधरा' काव्य को यद्यपि चम्पू की कोटि में माना गया है, किन्तु फिर भी उसके कथानक के दृष्टिकोण से प्रबन्ध की कोटि मे रखा जा सकता है।

यह उपर बतलाया जा चुका है कि गुप्तजी अधिकाशत' प्रबन्ध कवि हैं। इनके प्रबन्धो मे सम्बन्ध निर्वाह, मार्मिक स्थलों की पहिचान एव दृश्यों की स्थान-गत विशेषता का पूर्ण निर्वाह कही कही नही हो पाया है। फिर भी एक कोमल माप-दण्ड से उन्हे प्रबन्ध की मान्यता दी जा सकती है। गुप्तजी के प्रबन्धो में महाकाव्य और खण्डकाव्य दोनो प्रबन्ध भेद मिलते हैं।

—— महा काव्य ——

जिस काव्य मे सर्गबद्ध कथा हो, वस्तु वर्णन हो, भाव-व्यजना एवं रसो का समावेश हो, सम्वादो का सुन्दर निर्वाह हो उसे महाकाव्य की कोटि में गिना जा सकता

है। सानुबन्ध कथा से तात्पर्य कथावस्तु तथा सम्बन्ध योजना से है। काव्य सर्गों में वर्गीकृत होना चाहिए जिनकी संख्या ८ या उससे अधिक होनी चाहिए। प्रत्येक सर्ग मे चरितनायक की कथा चलनी चाहिए। सर्ग के अन्त में छन्द परिवर्तन महाकाव्य का आवश्यक गुण है। वस्तु वर्णन विभाव की दृष्टि से रस निष्पति मे सहायक होता है। समय ऋतु पदार्थ, प्रकृति का सुन्दर विवेचन महाकाव्य के लिये आवश्यक माना जाता है। संवाद काव्य की रोचकता में अभिवृद्धि करते हैं। काव्य का नामकरण नायक (प्रमुख पात्र) घटना या घटनास्थल के नाम पर होना समीचीन समझा जाता रहा है।[1]

१. साकेत—

प्रस्तुत काव्य का रचना-काल सं० १९८८ है। गुप्तकाव्य मे ही नही अपितु हिन्दी के अन्य महाकाव्यो में भी 'साकेत' का नाम प्रमुख रूप से लिया जा सकता है। 'साकेतकार' राम कथा को लेकर चला है तथा उसमे नवीनता लाने का उपक्रम किया है इसमे सन्देह नही कि उसको सफलता भी प्राप्त हुई है किन्तु कही कही पर इस नवीनता ने महाकाव्य तो क्या प्रबन्धत्व का भी बाधित करने का प्रयास किया है। काव्य की समस्त घटनाएं या तो 'साकेत' (अयोध्या नगरी) मे होती है अथवा उसके चारो ओर घूमती-सी दिखाई देती हैं। अतएव कवि ने अयोध्या नगरी को ही 'साकेत' नाम देकर उसके आधार पर ही काव्य का नामकरण किया है। 'साकेत' से पूर्व गुप्तजी ने 'उर्मिला' नामक काव्य लिखना प्रारम्भ किया किन्तु वह पूर्ण न हो सका और उसी काव्य की नायिका उर्मिला साकेत में अवतरित होकर कवि को सहानुभूति की अधिकारिणी हो गई है। इसका प्रमाण यह है कि अपूर्ण 'उर्मिला' काव्य की कुछ पंक्तियां साकेत के प्रथम सर्ग मे देखी जाती हैं—

> पद्मस्थ पदेमव शुभासनास्था, अपूर्व सी है जिसकी अवस्था।
> प्रत्यक्ष देवी सम दीप्ति माला, प्रासाद मे है यह कौन बाला।

उपर्युक्त पंक्तियाँ 'साकेत' मे कुछ परिवर्तन लेकर इस प्रकार देखी जाती हैं—

> अरुण-पट पहने हुए, आह्लाद मे,
> कौन यह बाला खडी प्रासाद मे ?[2]

भवभूति के हृदय की सीता, कालिदास के हृदय की शकुन्तला, हरिऔधजी की राधा ने ही मानो गुप्तजी के हृदय मे उर्मिला के रूप मे स्थान पाया प्रतीत होता है। अतः कवि उर्मिला के चरित्र के गौरव की प्रतिष्ठा करना चाहता है किन्तु राम के आदर्श के प्रति

---

१ – आचार्य दण्डी, काव्यादर्श, प्रथम परिच्छेद', १४–१९।

२ – गुप्तजी, साकेत, प्रथम सर्ग, पृ० १९।

मोह का विसर्जन भी नहीं कर पाता है। यही कारण है कि कुछ विद्वान् साकेत का नायक राम का मानते हैं। कुछ नायिका-प्रधान काव्य मानकर उर्मिला को प्रमुख स्थान प्रदान करते हैं। रवीन्द्रनाथ टैगोर तथा आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के वचन ही 'साकेतकार' के लिए साकेत की प्रेरणा बन कर आए और इस दृष्टि से उर्मिला को साकेत की नायिका माना जा सकता है। राम के चित्रकूट आगमन तक की कथा तो रामयण की जैसी है किन्तु कथा के उतरार्द्ध को वशिष्ट की याग-माया द्वारा प्रदर्शित कराया है। काव्य के पढने पर ऐसा ज्ञात होता है कि रावण-वध कराना कवि का ध्येय नहीं है, उसका ध्येय लक्ष्मण उर्मिला-का संयोग कराना है।

कवि ने प्रबन्धत्व के निर्वाह के साथ साथ नवम सर्ग में प्रगीति शैली को प्रश्रय दिया है जो कवि की नवीनता वादी दृष्टिकोण की सूचना देती है। प्रबन्धात्मकता नवीन छन्द याजना मे बाधा प्रस्तुत करती है। किन्तु बिना छन्द योजना के उर्मिला के हृदय की व्यथा का अभिव्यक्तिकरण भी तो एक समस्या बन जाता है।

काव्य १२ सर्गो में विभाजित है। महाकाव्य के कम से कम आठ सर्ग होना आवश्यक है, अत. इस दृष्टि से साकेत महाकाव्य की कोटि आ जाता है। महाकाव्य की अन्य विशेषताएं भी किसी न किसी रूप मे प्राप्त हो ही जाती हैं।

२. जय भारत—

यह गुप्तजी का द्वितीय महाकाव्य है जिसका प्रणयन साकेत के पश्चात् सं० २००६ में हुआ। प्रस्तुत काव्य गुप्तजी के समस्त प्रबन्धो में बडा है। महाभारत की कथा पर आधारित यह काव्य पाण्डवो के समग्र-जीवन की झाकी प्रदान करता है। समस्त-काव्य ४६ सर्गों में विभक्त है। कही कहीं पर कथा के विशृंखल होने के कारण कतिपय विद्वान् इसे महाकाव्य नहीं मानते हैं। कथा के सूत्रधार कृष्ण हैं किन्तु कवि का दृष्टि-कोण युधिष्ठर के आदर्श चरित्र को प्रस्तुत करता है। द्रौपदी, अर्जुन, भीम, नकुल, सहदेव आदि सभी मध्य मार्ग में प्राण विसजन करते हैं किन्तु कथा का अवसान युधिष्ठर के इन्द्रलोक मे पहुँचने पर होता है। इसके अतिरिक्त काव्य के मध्य में भी युधिष्ठर का अधिक महत्व दिखाई देता है अत: गुप्तजी ने युधिष्ठर को हो अपने काव्य का नायक माना है। जो सैद्धान्तिक दृष्टि से महाकाव्य का नायक हो सकता है। डा० नगेन्द्र ने जय भारत को राष्ट्र कवि के सम्पूर्ण रचनाकाल का प्रतिनिधि काव्य माना है। कवि ने उसे अपनी लेखनी का क्रमिक विकास माना है। 'जयभारत' प्रबन्ध काव्यो का संकलन प्रतीत होता है क्योकि 'हिडिम्बा', 'सैरन्ध्री', 'वन वैभव', 'बक संहार', 'नहुष', 'युद्ध', 'जयद्रथवध', स्वतन्त्र प्रबन्ध काव्यो के रूप में 'जयभारत' के प्रकाशन के पूर्व से ही हिन्दी-साहित्य ससार में आ चुके थे। 'जय भारत' के उपर्युक्त काव्यों के नाम वाले सर्गों में

इनकी ही कथा को सूक्ष्म करके प्रस्तुत कर दिया गया है। उदाहरण के लिए 'नहुष' काव्य की इन पक्तियो को लिया जा सकता है:—

सह्य किन्तु राज की अनीति भी तो एक बार,
अच्छी बात भुगतेंगे हम यह विष्टि-भार।[1]

उपर्युक्त पक्तिया 'जयभारत' मे 'नहुप' नामक सर्ग के अन्तर्गत इस प्रकार देखी जाती हैं.—

'सह्य निज राजा की अनीति भी है एक बार।
अच्छी बात भुगतेगे हम यह विष्ट-भार॥[1]

मैं अबला हूँ किन्तु अत्याचार सहूगी,
तुझ दानव के लिए चण्डिका बनी रहूगी।[2]

उपर्युक्त पंक्तिया 'जयभारत' के 'सैरन्ध्री' सग के अन्तर्गत पृष्ठ २५६ पर मिलती है किन्तु 'सैरन्ध्री' काव्य के पृ० २३ पर विना किसी परिवर्तन के ज्यो की त्यो मिल जाती हैं। अत 'जयभारत' काव्य गुप्तजी के तत्कथा सन्बन्धी अनेक खण्डकाव्यो का सग्रह प्रतीत होता है। जो हो, किन्तु आधुनिक युग में उसे महाकाव्य होने का गौरव प्राप्त है।

— खंड काव्य —

खण्ड काव्य "भवेत्काव्यंस्येकदेशानुसारिच" अर्थात् खण्ड काव्य जीवन के किसी विशेष अंश अथवा घटना को लेकर लिखा जाता है। नायक के जीवन के समस्त अशो का पर्यवेक्षण उसमे नही हो पाता है, क्योकि इसका कलेवर भी महाकाव्य की अपेक्षा छोटा होता है। सर्गों की सख्या का भी कोई बन्धन नही है। अत. उपर्युक्त दो लक्षणो के अतिरिक्त खण्ड-काव्य के वे ही लक्षण हैं जो महाकाव्य के हैं। इनके आधार पर हमे गुप्तजी के प्रबन्ध काव्यो के रूप खण्ड काव्यो का परीक्षण करना है।

१. रंग में भंग

इस खण्ड काव्य को रचना काल की दृष्टि से गुप्तजी की सर्व प्रथम रचना होने का सौभाग्य प्राप्त है। इसका रचनाकाल सं० १९६६ है। यह घटना-प्रधान काव्य ऐतिहासिक कलेवर मे प्रस्तुत किया गया है। बूदी और चितौड-नरेशो की घटना को

१ – गुप्तजी—नहुष, पृ० ३५।
२ – गुप्तजी—जय भारत, पृ० १२।
३ – जय भारत, सैरन्ध्री सर्ग, पृ० २५६।

काव्य का विषय बनाया गया है। बूंदी-नरेश वीरसिंह तथा उसका अनुज लाल सिंह अपनी पुत्री का पाणि-ग्रहण सस्कार चित्तौड के नरेश क्षेत्रसिंह के साथ करने का निश्चय करते हैं। विवाह सम्पन्न होने के उपरान्त वरपक्षीय राजकवि अपने राजा की अतिशयोक्तिपूर्ण प्रशस्ति करता है जो लालसिंह को सुन्दरता तथा स्वाभाविकता से विहीन लगती है। वह राजकवि से यह कह ही देता है—

कह सकते न यो किसी मे एक ईश्वर के बिना,
अद्वितीय मनुष्य जगत मे कौन जा सकता गिना।
एक से है एक उत्तम, पुष्प इस ससार का,
पार मिलता है किसे प्रभु-सृष्टि-पारावार का।[1]

राजकवि अपने कृत्य पर ग्लानि अनुभव करते हुए आत्म-हत्या कर लेता है। फिर तो विवाह के समय की शहनाइया, युद्ध-भेरियो में परिवर्तित हो जाती हैं। घमासान युद्ध होता है तथा वर, अपनी बरात के सदस्यो के साथ वीरगति को प्राप्त करता है। वह क्षत्रिय-कुमारी जिसने अपने पति-के दर्शन तक नही किए थे, मृत्यु की शरण लेती है। इस इस प्रकार शादी के रग मे भग हो जाने के कारण काव्य के पूर्वार्द्ध मे हुई घटना के नाम पर ही काव्य का नामकरण कर दिया गया है। इतनी घटना के उपरान्त काव्य का उत्तरार्द्ध प्रारम्भ होता है इसमें चित्तौड नरेश लाखा अपने पूर्वजो के वैर-प्रतिशोध की कामना से बूंदी के दुर्ग को तोडने की प्रतिज्ञा करता है। उसकी हठ को देखकर, बूंदी का कृत्रिम दुर्ग बनवाया गया। कुम्भ नामक एक वीर बूंदी का निवासी था, किन्तु लाखा के यहा रहने लगा था, इसको सहन नही कर पाता है। वह अपनी जन्म भूमि के स्वाभिमान के लिए अपने प्रणा की आहुति दे देता है। काव्य में वीर रस प्रधान है, भाषा का प्रयोग विषयानुकूल हुआ है। यद्यपि भाषा 'साकेत' की भाषा जैसी नही है।

२. जयद्रथ-वध—

रचनाकाल की दृष्टि से यह गुप्तजी का द्वितीय खण्डकाव्य है। इसका प्रणयन 'रग मे भग' रचना के १ वर्ष पश्चात् सं० १९६७ मे हुआ था। अपने इकलौते पुत्र अभिमन्यु को जयद्रथ के द्वारा स्वर्ग का पथिक बनाया सुनकर पुत्र की अशान्त आत्मा को प्रतिशोध-सलिल से शीतल करने के लिए अर्जुन ने दिवस अवसान तक जयद्रथ-वध की प्रतिज्ञा की। बस इसी घटना के आधार पर काव्य को नाम दे दिया गया है। वीर तथा करुण रस से युक्त इस काव्य का नायक अर्जुन है, यद्यपि उसकी प्रतिज्ञा के पूर्ण कराने में कृष्ण का अधिक योगदान है, किन्तु उसका निमित्त तो अर्जुन ही है। काव्य मे यद्यपि शुद्ध खड़ी

१ — गुप्तजी — रंग मे भंग, पृ० १२।

बोली का प्रयोग है किन्तु फिर भी पण्डिताऊपन की झलक भी साथ नही छोड़ने पाई है। यह गुप्तजी का प्रथम खण्डकाव्य है जो हिन्दी जगत मे सबसे अधिक लोक प्रिय रहा है। इस दृष्टि से प्रारम्भिक काल की गुप्तजी की रचनाओ में इस रचना को सर्वश्रेष्ठ कहा जा सकता है।

३. शकुन्तला—

इस तृतीय खण्ड-काव्य का रचना काल सं० १९७१ है। कालिदास के 'अभिज्ञान शाकुन्तलम्' की कथा को ग्रहण करके काव्य की सृष्टि की गई है। तत्कालीन समाज का सुन्दर चित्र प्रस्तुत किया गया है। न केवल पात्र तथा कथावस्तु को कालिदास से ग्रहण किया है अपितु विचार तथा भाव भी ग्रहण किए है। यद्यपि यह रचना स्वतन्त्र है किन्तु कही कही तो उपर्युक्त सस्कृत नाटक के वाक्यो को ,हिन्दी में पद्यात्मक रूप दे दिया गया है। प्रस्तुत रचना मे गुप्तजी की मौलिकता के दर्शन नही हो पाते हैं। राजा लक्ष्मण सिह द्वारा प्रस्तुत किया गया 'अभिज्ञान-शाकुन्तलम्' का सुन्दर अनुवाद हिन्दी पाठको को प्राप्त हो चुका था किन्तु उसकी भाषा ब्रज तथा अवधी थी। गुप्तजी ने इसी को खडी बोली में लिख कर खडी बोली के विकास मे योग देते हुए एक प्रबन्ध-काव्य की संख्या की अभिवृद्धि की। छन्द प्रबन्ध की दृष्टि से राजा लक्ष्मण सिंह की अनुदित 'शकुन्तला' नामक कृति कही अधिक श्रेष्ठ हैं। रस परिपाक की दृष्टि से दोनो रचनाएं समान कोटि की कही जा सकती हैं।[1]

४. किसान—

प्रस्तुत रचना विषय की दृष्टि से अजित की कोटि मे आती है किन्तु रचनाकाल के दृष्टिकोण से इसे शकुन्तला के पीछे रखा जा सकता है क्योकि इसका रचनाकाल स० १९७४ है। कल्लू काल्पनिक पात्र को लेकर किसान का चित्रण प्रस्तुत किया गया है। किसान जब महाजन तथा जमीदारो की चक्की से पिस रहा था, अन्न उत्पन्न करके स्वयं भूखो मरता था, गुप्तजी ने उसी किसान की दारुण बिडम्बना पर भी अश्रु बहाकर, दीन कृषको के हृदय को टटोला। यदि 'गोदान' सृष्टा होरी को लेकर चला तो 'किसान' का प्रणेता 'कल्लू' को। आत्मकथात्मक शैली इस काव्य की सुन्दरता को और अधिक बढ़ा देती है। कल्लू अपने जीवन से व्यथित होकर देशत्याग कर देता है, कुली का जीवन यापन करता है किन्तु अभागे को किसान के अभिशप्त कुल में उत्पन्न होने के कारण सुख कहा ?

१ – तुलनात्मक अध्ययन हेतु देखें— कवि नेवाज कृत सकुन्तला नाटक, सम्पादक — साहित्य शिरोमणि राजेन्द्र शर्मा।

यद्यपि वह ईश्वर का परमोपासक है किन्तु ईश्वर भी काले कल्लू के लिए बधिर हो गया है। समस्त काव्य मे करुण रस का सचार है। यद्यपि कल्लू एक साधारण किसान है जो विधि की विडम्बना से व्यथित है किन्तु फिर भी वह विशाल हृदय वाला है। समस्त देश को अपने परिवार के रूप में देखता है। कल्लू की पत्नी को चाहे भले ही अपने देश में रह कर जल के स्थान पर अश्रु पान करना पड़ा हो किन्तु संसार का परित्याग करते समय अपनी शव के पुष्प भारत पहुँचाने की कामना प्रकट करती है। इस दम्पति मे देश-प्रेम की भावना कूट-कूट कर भरी है। इनको किसी ने पाठशाला में शिक्षा नही दी थी किन्तु फिर भी इतनी देशभक्ति के पीछे किसी देशभक्त प्रणेता की भावानुभूति छिपी। कल्लू की स्त्री कहती है:—

लो बस, अब मैं चली, सदा को, मन मे मत घबराना।
मेरे फूल, आ सको तो तुम, भारत को ले आना॥[1]

इस कृति मे कवि गान्धीवादी विचार-धाराओ से अधिक अभिभूत सा दिखाई देता है। महात्मा गाधी के द्वितीय असहयोग आन्दोलन के समय अफ्रीका मे निवास करने वाले भारतीय किसान इसी दारुण भट्टी मे सुलग रहे थे। क्या पता, किसी कृषक ने उसी समय कल्लू तथा कुलवन्ती के रूप मे उछलकर गुप्तजी की लेखनी को पकड़ लिया हो और अपने आसू पोछने को बाध्य किया हो।

भाषा भारत-भारती की जैसी है। जन-जागरण की दृष्टि से यह एक अनूठी रचना है। इसी दृष्टिकोण से इसे प्रगतिवाद के समय मे पर्याप्त स्थान मिला। यह एक उत्कृष्ट खण्ड काव्य है, इसमे सन्देह को स्थान नही है।

५. पंचवटी—

यह पौराणिक काव्य गुप्तजी का पचम खण्ड-काव्य है क्योंकि इसका रचना-समय स० १९८३ है। इस खण्ड काव्य के अब तक ३१ सस्करण निकल चुके हैं जो इसकी लोक-प्रियता की दुन्दुभी बजाते हैं। राम कथा को लेकर इस काव्य की सृष्टि हुई है। काव्य का घटना-चक्र 'पंचवटी' मे ही घटित होता है अत. 'साकेत' की भाति इस काव्य को पंचवटी नाम दे दिया गया। शूर्पणखा, लक्ष्मण, राम और सीता आदि रामायण के पात्रो को ग्रहण किया गया है। 'पंचवटी' मे लक्ष्मण का चरित्र अधिक मार्मिक हो गया है। रचना में ऐसे प्रसगो की उद्भावना की गई है जिससे लक्ष्मण को प्राधान्य प्राप्त हो। प्रमुख विषय शूर्पणखां का तिरस्कार तथा उसकी नासिकाच्छेदन है। कुप्रवृतियो

---

१ - गुप्तजी—किसान, पृ० ४१।

मे युक्त नारी दण्डनीया होती है, यह लक्ष्मण के माध्यम से कवि का सन्देश है। कुछ लोगो का कहना है कि प्रेम स्त्री का जन्म सिद्ध अधिकार है और यदि शूर्पणखा ने लक्ष्मण से प्रेम की भीख मागी तो क्या बुरा किया, जिसके कारण उसे कुरूपिता किया गया। किन्तु स्त्री को वासना की अग्नि मे जलकर यह नही भूलना चाहिए कि प्रत्येक पुरुष भी तो प्रेम पात्र नही होता है। उसमे हिडिम्बा की जैसी एक निष्ठता का अभाव है। निषेधात्मक उत्तर पाने पर वह लक्ष्मण को अपना विकराल रूप दिखाती है मानो वह यती उससे भयभीत हो जायगा। ऐसी परिस्थिति मे लक्ष्मण की प्रतिक्रिया स्वाभाविक है। वह ईट का जवाब पत्थर से देता हुआ कहता है —

कि तू न फिर छल सके किसी को,
मारू तो क्या, नारी जान,
विकलागी मै तुझे करू गा,
जिसमे छिप न सके पहिचान।[1]

यहा गुप्तजी ने इतनी सबला शूर्पणखा के लिए 'अबला' शब्द प्रयुक्त कराया है; जिसके प्रति कवि का मोह प्रतीत होता है। काव्य वीर रस प्रधान है। भाषा अत्यन्त सुन्दर है।

६. शक्ति —

इस खण्ड काव्य का रचनाकाल स० १९८४ है। पौराणिक विषय तथा पात्रो को लेकर रचा गया यह गुप्तजी का छठा खण्ड काव्य है। इसमे शक्ति के शौर्य का वर्णन है। देव-दानवो के युद्ध में महिषासुर को काल का ग्रास बनाती हुई रण-चंचला महा-शक्ति ने देवो का उद्धार किया। वीर-रस का सर्वत्र सचार हुआ है। उदाहरणार्थ ये पंक्तिया ली जा सकती है —

गरजी अट्टहास कर अम्बा, देख हड्ड के हड्ड,
दहल उठे जल थल, अम्बर तल, घटा विकट संघट्ट।[2]

उपर्युक्त पक्तिया गौडी रीति के अन्तर्गत आती हैं। वीर रसानुकूल भाषा का प्रयोग हुआ है। वीप्सा अलंकार प्राय: सारी रचना में मिलता हैं क्योकि युद्ध मे तो उसका महत्व और अधिक बढ जाता है। वीर रस भयानक रस में उस समय परिवर्तित हो जाता है जिस समय देवी, महिषासुर का वध करती है। वीरता प्रधान गुप्तजी की रचनाओ में 'शक्ति' एक महत्वपूर्ण स्थान रखती है।

---

१ – गुप्तजी—पचवटी पृ० ६३।
२ – गुप्तजी—शक्ति, पृ० १२।

७. सैरन्ध्री—

सं १६८४ में प्रस्तुत खण्ड काव्य गुप्तजी का सप्तम खण्ड काव्य कहा जा सकता है। महाभारत की कथा को लेकर चलने वाले इस काव्य मे द्रोपदी (सैरन्ध्री) तथा कीचक के प्रसग को महत्व प्रदान किया गया है। कीचक के आजाने से सैरन्ध्री के चरित्र में चार-चाद लग जाते हैं। उसका भारतीय आदर्श नारी का स्वरूप प्रकाश मे आ जाता है, यही कवि का अभिप्रेत है। पाण्डव अपनी मा कुन्ती तथा द्रोपदी सहित राजा वैराट के यहां अपने अज्ञातवास की अवधि को पूर्ण कर रहे हैं। कीचक वैराट का मन्त्री है। वह द्रोपदी को अपनी कुदृष्टि का केन्द्र बनाता है किन्तु सैरन्ध्री उसके लिए अबला से सबला बन जाती है और उसके एक धक्के के साथ वह नर-पिशाच मुंह के बल गिर जाता है। इस काव्य में गुप्तजी ने सैरन्ध्री में शील, रूप के साथ साथ शक्ति का भी समावेश किया है। सैरन्ध्री निस्सन्देह रूप से काव्य की नायिका है। उसके चरित्र का प्रतिष्ठापना ही प्रमुख कार्य है इसीलिए सैरन्ध्री के नाम पर इस कृति का नाम रखा गया है। काव्य वीर-रस प्रधान है। नारी की कठोर तथा कामल दोनो वृतियो का सम्यक् चित्रण हुआ है। कीचक के बलात्कार करने पर जो सैरन्ध्री व्याघ्री के समान है, वही भीम द्वारा वधित कोचक को देखकर करुणा की मूर्ति सी प्रतीत होती है। भाषा लगभग जयद्रथ-बध की जैसी है।

८. बक संहार—

गुप्तजी के इस अष्टम खण्डकाव्य का प्रणयन सं० १६८४ मे हुआ है। 'सैरन्ध्री' की भाति इस काव्य की कथा भी महाभारत से संग्रहीत है। भीम-द्वारा बकासुर का वध किया जाता है अतः काव्य घटना-प्रधान है। पाण्डव अपने निर्वासन की अवधि-यापन करते हुए ब्राह्मण के यहा निवास करते हैं। वहा बकासुर को भोजन लेकर बारी बारी से प्रत्येक घर से एक व्यक्ति को जाना पडता है। वह दुष्ट न केवल भोजन को, अपितु ले जाने वाले को भी खा जाता है। ब्राह्मण के परिवार मे से सदस्य की बारी आने पर समस्त परिवार में शोक छा जाता है। ब्राह्मण की कन्या अपने इकलौते भाई की रक्षा के दृष्टिकाण से स्वयं जाने का आग्रह करती है। ब्रह्मणी को अपने पति, पुत्र और पुत्री प्रिय हैं अत वह स्वय अपने प्राणोको उस बकासुर को दे देना चाहती है। इधर ब्राह्मण स्वय जाना चाहता है किन्तु इस समाचार को सुनकर कुन्ती उन्हें धैर्य देती है तथा भीम को बकासुर का आहार लेकर भेजती है। भीम बकासुर का वध कर डालता है। प्रस्तुत रचना में भीम का शौर्य तो दिखाई देता ही है किन्तु उसके साथ साथ कुन्ती का त्याग तथा करुणामय रूप मुखरित हो उठा है। पात्रो में कोई परिवर्तन नही है, सारे पात्र महाभारत प्रथित हैं। कवि ने अपने ढग से काव्य रचना करके कुन्ती के चरित्र की उदात्तता का उन्मेष किया है। काव्य के पूर्वार्द्ध में करुण रस मिलता है किन्तु उत्तरार्द्ध मे वीर रस आ जाता है।

भाषा विषयानुकूल प्रयुक्त हुई है। यह कथा 'जयभारत' के अतिथि और 'आतिथेय' नामक सर्ग मे ज्यो की त्यो मिलती है।

९. वन वैभव—

प्रस्तुत रचना का प्रकाशन समय सं० १९८४ है। 'बकसंहार' की भांति इस काव्य की कथा भी महाभारत से ली है तथा पात्र भी महाभारत के है। गुप्तजी ने इस नवम खण्ड-काव्य का नामकरण 'वन-वैभव' इसलिए किया है कि पाण्डवो ने वन मे निवास करते हुए भी कौरवो को यक्ष के द्वारा नष्ट होने से बचाया। घटना को प्राधान्य दिया गया है। पाण्डवो के वन मे निवास करते समय उसी वन के एक सरोवर के पास मृगया हेतु निसृत कौरवो मे यक्ष की लडाई होती है। कौरवो को बुरी तरह से पराजित हो जाना पडता है। उसी समय कौरवो का एक भृत्य पाण्डवो के समीप सहायता की याचना करता हुआ समस्त घटना को सुना देता है। यहा युधिष्ठिर में आत्मीयता का समावेश हो जाता है। वे भावुक हो जाते हैं। भीम कौरवो की परिस्थितियो से अनुचित लाभ उठाकर उन्हे नीचा दिखलाना चाहता है, किन्तु युधिष्ठिर 'भीम शरणागत का अपमान' तुम्हारा कहा गया है ज्ञान' कह कर भीम को ऐसा करने मे रोकते हैं तथा अर्जुन को कौरवो की निष्कृति हेतु भेज देते है। यहा युधिष्टिर के आदर्श-चरित्र की प्रतिष्ठा की है। कवि गान्धीवादी विचारधारा से प्रभावित, होकर—मनुष्य को नही उसकी बुराइयो को घृणा करो' का पाठ युधिष्ठिर के द्वारा सिखलाता है। यक्ष की पराजय के उपरान्त कौरव लज्जित होकर चले जाते है। युधिष्ठिर कौरवो को अपना भाई समझते हैं। वीर-रस प्रधान रचना है। शुद्ध भाषा का निर्वाह हुआ है। खडी बोली की सुन्दर रचना है। यह कथा 'जय भारत' के 'वन वैभव' नामक सर्ग में ज्यो की त्यो मिलती है।

१०. हिडिम्बा—

गुप्तजी की दसवो रचना है जिसका रचना का समय सं० १९८५ के आस पास है। महाभारत की कथा को ही ग्रहण किया है। पात्र सभी 'महाभारत' के प्रथित पात्र हैं। महाभारत की हिडिम्बा इतनी सात्विक-वृति वाली नही है जितनी गुप्तजी की हिडिम्बा है। भीम वन मे पिपासाकुल माता तथा श्रान्त बन्धुओ को छोडकर उनके लिए पानी लेने जाता है सरोवर के निकट उसे हिडिम्बा मिल जाती है। उसके हृदय में भीम को देखकर पवित्र-प्रेम की पीयुष-धारा वह निकलती है। उसने भीम के सम्मुख अपने प्रेम का निवेदन किया किन्तु आज्ञाकारी भीम अपनी माता तथा वडे भाइयो की आज्ञा के बिना कुछ नही कह पाता है। अन्त मे युधिष्ठिर तथा कुन्ती के समक्ष भीम उससे शादी कर लेता है। हिडिम्बा के भाई हिडिम्ब को जब यह ज्ञात होता है तो वह भीम से युद्ध करने को तत्पर होता है तथा भीम उसका वध कर डालता है। हिडिम्बा वही रह जाती है जो भीम के सम्बन्ध से

घटोत्कच को जन्म देती है। इसमें हिडिम्बा के चरित्र का उदात्तीकरण प्रस्तुत किया गया है। वह काव्य की नायिका है। इसीलिये 'हिडिम्बा' नाम से काव्य को कहना उचित समझा गया है। एक-निष्ठ-प्रेम तथा हृदय की पावनता ही स्त्री के लिए सफलता का मार्ग प्रशस्त करते हैं साथ ही साथ क्रूर वृत्तियो का परित्याग सबको रुचिकर प्रतीत होता है। पचवटी की शूर्पणखा से हिडिम्बा भिन्न है। एक बिनय के असफल हो जाने पर भय से काम वासना की पूर्ति चाहती है तो एक विनम्रता से कुलवती जाया बनने की कामना अभिव्यक्त करती है। जहा भीम तथा हिडिम्बा के सवाद हैं शृंगार रस का परिपाक है, वहा हिडिम्ब से युद्ध करते समय वीर रस आ जाता है तथा भाषा भी तदनुकूल परिवर्तित होनी जाती है। 'हिडिम्बा' नामक सर्ग भी सूक्ष्म रूप मे 'जयभारत' में मिलता है।

११. युद्ध—

इस ११ वें खण्डकाव्य का सृजन 'हिडिम्बा' काव्य के आस पास हो हुआ हैं। घटना प्रधान-काव्य है जैसा कि उसके शीर्षक से ही अनुमान किया जा सकता है। उपर्युक्त अन्य खण्ड काव्यों की भाति इस काव्य की कथा भी महाभारत से संकलित है। भगवान कृष्ण अर्जुन के रथ के सारथि मात्र होने तथा युद्ध-स्थल में शस्त्र-धारण कर युद्ध न करने की प्रतिज्ञा कर चुके थे किन्तु भीष्म पितामह इतना भयकर युद्ध करते हैं कि पाण्डव सेना ही नही स्वय धनजय का भी गाण्डीव काप उठता है। ऐसी परिस्थिति में कृष्ण अपने परमभक्त तथा मित्र अर्जुन को कातर देखकर अपनी प्रतिज्ञा की चिन्ता न करके शस्त्र-ग्रहण करके भीष्म के समक्ष आ जाते है किन्तु शस्त्र-पाणि कृष्ण के समक्ष भीष्म उनकी प्रतिज्ञा का स्मरण कराके चरणो पर गिर जाते हैं। युद्ध काव्य मे इसी घटना का प्राधान्य है। नाम की सार्थकता इस कृति की अपनी विशेषता है। इस विषय को लेकर नाटक आदि भी लिखे गए हैं। भाषा परिष्कृत तथा वीर रस के अनुकुल प्रयुक्त हुई है।

१२. विकट भट—

इस रचना का सृजन काल स० १९८५ है। कालक्रम की दृष्टि से इसे गुप्तजी का १२वा खण्डकाव्य कह सकते हैं। ऐतिहासिक कथावस्तु, काव्य के कलेवर का निर्माण करती है। राजा विजय सिह अपने अहभाव में आकर देवीसिह तथा जैतसिह नामक दो परम मित्रों को उनके कटु सत्य बोलने के कारण मृत्यु के घाट उतरवा देता है। इन दोनो वीरो के ही वश मे देवीसिंह का पुत्र सबलसिंह भी उसी बात के कहने पर वीरगति को प्राप्त हुआ। सबलसिंह का पुत्र अथवा देवीसिह का पौत्र, सवाई सिंह गुप्तजी का विकटभट है। जिसके नाम पर काव्य को नाम दिया गया है। यह अत्यन्त ही निर्भय क्षत्रिय कुमार है।

शत्रु के समक्ष वह अपने पूर्वजो के वचनो पर दृढ़ रहता है । मृत्यु का उसे भय नही है । उसकी स्पष्टवादिता तथा पराक्रम का विजयपालसिंह पर अनुकूल प्रभाव पडता है वह उस पराक्रमी युवक को स्नेहालिंगन के साथ साथ देवीसिंह तथा जैतसिंह की निर्मम हत्या के प्रति प्रायश्चित प्रदर्शित करता है । काव्य में वीर रस का सचार हुआ है । करुण तथा वीभत्स भी अगरस बनकर आते हैं । भाषा की दृष्टि से काव्य अधिक सुन्दर है उसमे हिन्दी के तत्सम तथा तद्भव शब्दो का प्रयोग साथ साथ हुआ है । इसकी सबसे बडी विशेषता है कि रचना का कलेवर अतुकान्त छन्दो मे प्रस्तुत किया गया है । जहा गुप्तजी की लेखनी निर्वाध होकर चलती है वहा वह अनुभूति देती है और काव्य के यथार्थ अर्थ का द्योतन करती है । ठीक वैसी ही विशेषता प्रस्तुत काव्य मे पाई जाती है ।

१३. गुरुकुल--

सं० १९८५ मे लिखित 'गुरुकुल' कृति ऐतिहासिक कथावस्तु का आधार लेकर प्रस्तुत की गई है । इसको गुप्तजी का तेहरवा काव्य मान सकते हैं । सिक्ख-गुरुओ की क्रमागत परम्परा काव्य का विषय बन कर आई है । कालिदास के 'रघुवंश' मे जिस प्रकार अनेक नायक है ठीक उसी प्रकार गुरुकुल में भी नायक परिवर्तित होते रहते हैं । गुरुकुल वर्ण्य विषय होने के कारण ही रचना का नामकरण किया गया है । गरुकुल में गुरु नानक, रामदास, हरिगोविन्दसिंह, गोविन्दसिंह, जोरावर, फतहसिंह, तेग बहादुर तथा बन्दा वैरागी आदि के चरित्रो तथा कृत्यो का वर्णन है मुसलमानो से गुरुकुल का सदैव सघर्ष रहा एवं गुरुकुल के गुरु सघर्ष का सामना बडी वीरता से करते रहे । उनके बहुधा बलिदान भी हुए । एकता की प्रवृत्ति तथा मतभेदो के निराकरण के दृष्टिकोण से ही प्रस्तुत काव्य की सृष्टि हुई है जैसा कि काव्य की भूमिका मे लिखित पक्तिया से देखा जा सकता है :—

> "लेखक ने जहा तक हो सका है मतभेदो की बातो से अपने को बचाया है । यदि इस पुस्तक से हम मे परस्पर कुछ भी एकता की प्रवृत्ति उत्पन्न हुई तो लेखक का सारा श्रम सार्थक हो जायगा ।"[1]

जहा काव्य मे वीर रस मिलता है भाषा ओज पूर्ण है । अन्य स्थलो हर वह प्रबन्धानुकूल है ।

१४. यशोधरा--

यशोधरा के विषय मे ऊपर कुछ कह दिया गया है । यद्यपि यह रचना चम्पू काव्य की कोटि में आती है किन्तु फिर भी कथा के क्रमिक-विकास को ध्यान में रख कर

---

१ – गुरुकुल, पृ० २४

खण्ड काव्य मान सकते हैं। यह गुप्तजी का १४ वा काव्य है जिसका रचना काल सं० १९८९ है। 'साकेत' के पश्चात् गुप्तजी ने रचना में पुनः उपेक्षिता गोपा की ओर दृष्टि-निक्षेप किया। उसके मा तथा वियुक्त पत्नी के स्वरूपो का कवि ने बडे सुन्दर ढग से वर्णन प्रस्तुत किया है। वह राहुल की जननी है तो सिद्धार्थ की वियोगिनी गोपा है। वह पुत्र के लिए गाती है तथा पति के लिए रोती है। गुप्तजी ने सिद्धार्थ की ससार के प्रति उच्चाटन का प्रारम्भ में ही परिचय दे दिया है, पुत्रवती वियोगिनी वनिता का रूप चित्र इन पंक्तियो से देखा जा सकता है:—

> अबला जीवन हाय ! तुम्हारी करुण कहानी,
> आचल मे है दूध और आखो मे पानी।[1]

गुप्तजी की नारी भावना इस काव्य में मुखरित हो उठी है। यशोधरा ही काव्य का विषय बनती है। विप्रलम्भ शृंगार तथा वात्सल्य रस का प्राधान्य है। भाषा काव्य के प्रवाह के अनुकूल है किन्तु कही कही तुक के मोह ने काव्यत्व पर आघात किया है। और ऐसा ज्ञात होता है कि मानो कवि को शब्द ही नही मिल रहे हैं। 'जोड़ जाड़' या 'पल्ला झाड़' आदि शब्द तुक के प्रति मोह का प्रकटीकरण करते हैं।

बौद्ध कथा का आधार लेकर चलने वाली यह कृति गुप्तजी के काव्यो में महत्व-पूर्ण स्थान रखती है। हिन्दी जगत में इसका भव्य स्वागत हुआ है।

१५. सिद्धराज—

यह एक ऐतिहासिक रचना है जो सवत १९९३ में हिन्दी-साहित्य में अवतरित हुई। यह गुप्तजी का १५ वा खण्ड काव्य है। उनकी उत्कर्ष कालीन रचनाओ में इस कृति का महत्वपूर्ण स्थान है। सिद्धराज जयसिंह १२ वी शताब्दी का क्षत्रिय राजा है। उसका नाम जयसिंह है और सिद्धराज उसकी सम्बोध्य उपाधि है। नायक के नाम पर ही काव्य का नाम करण किया गया है। जीवन के खण्ड रूप का चित्रण प्रस्तुत किया है। शुद्ध खण्ड काव्य के सारे लक्षण इस कृति मे उपलब्ध होते हैं। पाच सर्गों में विभाजित है। प्रथम, द्वितीय तथा तृतीय सर्ग के मध्य तक सिद्धराज के शौर्य का वर्णन, मातृ-प्रेम को प्राधान्य मिला है। किन्तु तृतीय सर्ग में जयसिंह की पाशविक वृत्ति का निरूपण भी कवि ने प्रस्तुत किया है। किन्तु गुप्तजी ने उस पतन के परिवेश में यह उपदेश दे दिया है—

> भूल इस भव मे, मनुष्य से हो होती है,
> अन्त मे सुधारता है उसको मनुष्य ही।
> किन्तु वह चूक, हाय, जिसके सुधार का,

---

१ – गुप्तजी–यशोधरा, पृ० ४७।

रहता उपाय नही हूक बन जाती है,
और जन-जीवन बिगड़ जैसे जाता है ।[१]

चतुर्थ तथा पंचम सर्ग में जयसिह पुन: उदार-वृत्ति हो जाता है। राणकदे के प्रति पाशविक व्यवहार तथा उसके दो बच्चो की निर्मम-हत्या उसे कष्ट देती है। अपनी पुत्री काचनदे को अर्णोराज के साथ व्याह कर वह सच्चा पिता बन जाता है। अर्णोराज तथा काचनदे का जहा वार्तालाप है वहा शृ गार रस पाया जाता है जैसा कि अधोलिखित पंक्तियो से देखा सकता है :—

एक क्षण ऐसा इस जीवन मे आता है,
एक पल मे जो नई सृष्टि रच जाता है।
मुग्धा एक क्षण मे ही मध्या बन जाती है।[२]

जगद्देव नामक पात्र का चरित अत्यन्त सुन्दर दिखाया गया है। जिसका विस्तृत चरित रासमाला[3] मे प्राप्य है। प्रारम्भिक सर्गों का वीर तथा अन्तिम सर्ग का शृंगार सहृदय पाठको को विमुग्ध कर देता है। भाषा तत्सम शब्द प्रधान है। उदाहरणार्थ तोरण, स्वर्णकलश, शिविर कक्ष आदि शब्द गिनाए जा सकते हैं।

१६. नहुष--

प्रस्तुत १६ वें खण्डकाव्य का प्रतिपादन सं० १९९४ के आस पास किया गया। यह एक पौराणिक काव्य है न केवल तथावस्तु अपितु पात्र भी पौराणिक ही हैं। 'जयभारत' के 'नहुष' नामक सर्ग के अन्तर्गत यही कथा ज्यो की त्यो प्रस्तुत की गई है। ब्रह्म-हत्या के परिशोध के लिए इन्द्र को पद-च्युत होना पडता है तथा नहुष को इन्द्र की पदवी से विभूषित, किया जाता है। नहुष सुरेश बनकर पतनोन्मुख होता है। इन्द्र-पत्नी शची के सतीत्व पर कुठाराघात की भावना उसे अन्धा बना देती है। इतना ही नही अपितु शची को प्राप्त करने के लिए पालकी मे बैठकर जाता है जिसको ऋषिगण वहन करते हैं। किन्तु दम्भ का घडा फूटता है तथा ऋषियो के शाप के वशीभूत होकर नहुष सर्प की योनि पाता है। प्रस्तुत काव्य में नहुष की कथा प्रमुख है। नहुष के चरित्र का उत्कर्ष तथा पतन एक साथ प्रदर्शित किया गया है।

---

१ – गुप्तजी–सिद्धराज, पृ० ८४।
२ – वही, पृ० १०२।
३ – अलैक्जेण्डर किन्लॉक फार्बस रचित 'रासमाला' [प्रथम भाग, उत्तरार्द्ध (हिन्दी)]
—अनुवादक, गोपालनारायण बहुरा।

नहुप काव्य की विशेषता यह है कि वह भावना को एक सन्देश देता है वह यह कि मनुष्य को प्रभुत्व पाने पर, मानसिक सन्तुलन नही खोना चाहिए और उसमें अनधिकृत कार्यों के करने की भावना नही आनी चाहिए अन्यथा नहुष के समान पतन आवश्यक है। मनुष्य अपने कृत्यो से ही ऊपर उठता है और कृत्यो से ही गिर जाता है। मनुष्य जीवन में प्रगति तथा अधोगति सम्भव होती है तभी तो कवि कहता है :—

नारायण ! नारायण ! धन्य नर साधना[1]

सुरत्व से पुरुषत्व अधिक स्पृहणीय प्रतीत होता है। काव्य की भाषा-शैली अत्यन्त श्रेष्ठ है।

१७. अर्जन और विसर्जन—

यह खण्डकाव्य दो लघु काव्यो का सग्रह है। इसका प्रणयन स० १९९९ में हुआ था। इसको गुप्तजी का सतरहवा काव्य कहा जा सकता है। प्रथम भाग अर्जन है जिसमें दमिश्च की घटना लेकर कवि चला है उसने घटनाकाल को विक्रमी सातवी शती का स्वय बतलाया है। अरब-अनीकिनी ने दमिश्च पर आक्रमण किया। युद्ध चलता रहा। दमिश्च सेना नायक टमास भी युद्ध मे काम आगया। दमिश्च मे इउडोसिया तथा जोनस नामक प्रेमिका प्रेमी भी रहते हैं। इउडोसिया देश-भक्ति तथा धार्मिक भावना से युक्त है। अपनी जन्म-भूमि के सकट के समय वह जोनस की नसो मे उत्साह भर देती है किन्तु जोनस उसे किसी न किसी प्रकार अपनी पत्नी बना लेना चाहता है। युद्ध में अरब-अनीकिनी विजयिनी होती है। जोनस पराधीन होकर तथा अरब-सेनापति के समक्ष इउडोसिया को प्राप्त कराने का आश्वासन लेकर मुसलमान धर्म स्वीकार कर लेता है। अरब-सेना-पति की आज्ञानुसार इउडोसिया दमिश्च का परित्याग करना चाहती है क्योकि वह मुसलमान राज्य मे रहना नही चाहता। जोनस उसे प्राप्त करने की चेष्टा करता है किन्तु वह उस को मुसलमान धर्म के अर्जन का उपालम्भ देती है। और कहती है कि ऐसा उसका पति नही हो सकता है। जिस जोनस को प्रेम करती थी उसका वह मुख भी नही देखना चाहती है। अन्त में कटार मार कर मर जाती है। इस प्रकार यह इउडोसिया तथा जोनस को कथा से ही अर्जन खण्ड कलेवर प्रस्तुत किया गया है।

विसर्जन का घटनास्थल उत्तरी अफ्रीका है तथा घटनाकाल विक्रमी आठवी शती का है जैसा कि गुप्तजी ने कृति में संकेत किया है। मूर प्रदेश में काहिना नामक रानी है उसका प्रभुत्व सर्वत्र व्याप्त है। मुहम्मद शाह अरब सेना लेकर मूर प्रदेश पर आक्रमण करते हैं किन्तु मूर-सेना जीत जाती है। काहिना दूरदर्शिनी है। वह जान लेती है कि

१ – गुप्तजी—नहुष, पृ० १२।

सफल हुए हैं। ऐतिहासिक पात्रो की ऐतिहासिक विशेषताओ को अक्षुण्य रखते हुए भी अपनी इच्छा के अनुसार पात्र को मोडना ही तो कवि के कौशल का सूचक है। यदि ऐतिहासिक पात्र गगा है, तो पौराणिक पात्र यमुना तथा काल्पनिक पात्रो की सरस्वती उनके मध्य से प्रवाहित होकर त्रिवेणी की सृष्टि करती है। काल्पनिक पात्रो का मेल ऐतिहासिक पात्रो के साथ ऐसा बैठाया है कि पाठक काल्पनिक पात्र को भी ऐतिहासिक समझ बैठता है। और इस प्रकार के कौशल मे ही कवित्व निहित होता है और कवि की पात्र चयन की शक्ति की परीक्षा होती है। ठीक ऐतिहासिक पात्रो की भाँति पौराणिक पात्रो की भी प्रथित चारित्रिक विशेषताओ को अक्षुण्य रखते हुए भी आधुनिकता का समावेश किया है। कवि ने नहुष जैसे पौराणिक पात्रो के अन्तर मे प्रवेश कर नवीन युग के मानव को उत्साह का पाठ पढाया है। अतः गुप्तजी के प्राचीन पात्रो मे नवीनता तथा नवीन-युगीन पात्रो में प्राचीनता के दर्शन किए जा सकते हैं। किसान काव्य का कल्लू अपने पेशे का परिवर्तन करके जहाँ प्रगतिशीलता का परिचायक है, वहा किसान सुलभ आत्म-सम्मान का उसमे अभाव है। वह जहा समाज की कुण्ठाओ से ग्रसित है वहा प्रेमचन्द के होरी की भाति अपने जीवन को शापित करता है। शकुन्तला प्राचीन युग के पात्रो में से है। जहा उसमे प्राचीन आदर्श नारी के गुण उपलब्ध होते हैं वहा दुष्यन्त के प्रणयन से पूर्व उसमे आधुनिक स्त्रियो के गुण भी है।

नारी पात्रो के चयन मे गुप्तजी का महत्त्वपूर्ण स्थान है। उर्मिला, यशोधरा, सैरंध्री, शकुन्तला, विष्णु प्रिया आदि नारी पात्रो का अन्य काव्यो मे तथा कथाओ से नामकरण चाहे भले ही मिल जाय किन्तु उनकी चारित्रिक विशेषताए सर्वत्र दबी है। गुप्त जी ने इस प्रकार की धूलि धूसरित मणियो का सस्कार करना सीखा है। उन्होने न केवल उर्मिला के चरित्र का उद्दातीकरण किया है, अपितु उसके साथ साथ वे केकयी का भी न भुला सके। "अपराधिन मैं हू तात। तुम्हारी मैया" उसके मुख से कहलवाकर गुप्तजी ने न केवल क्षमा की याचना कराई है अपितु केकयी के निर्मलचित्त का भी परिचय प्रदान किया है। मानस का पाठक जहा केकयी के प्रति ईर्ष्या की अग्नि से जल उठता है वहा 'साकेत' का पाठक गुड के साथ चटनी का रस अनुभव करके उसके प्रति सहानुभूति प्रदर्शित करता है। यशोधरा का नाम राहुल तथा गौतम के साथ आता तो अवश्य है, किन्तु यशोधरा की हूक 'यशोधरा' काव्य से ही निकली। चैतन्य का नाम सुविख्यात है। किन्तु अनेक यातनाएं झेलने वाली विष्णु प्रिया विस्मृति के पथ पर भटकती रही। गुप्त जी ने ही उसको स्मृति के पथ पर लाकर संसार के समक्ष प्रस्तुत किया है।

निष्कर्ष

प्रबन्ध-काव्य का सारा ढांचा पात्रो की पीठिका पर तैयार होता है। कल्पित पात्रो के सम्बन्ध में कवि किसी भी दिशा में स्वतन्त्रता लेकर चल सकता है, क्योकि वह उसकी मानसिक सृष्टि होता है। फिर भी, उसके निर्माण में कवि की प्रवृति का प्रमुख स्थान होता है। इसके विपरीत ऐतिहासिक या पौराणिक पात्रो के सम्बन्ध में कवि की स्वतन्त्रता अति सीमित होती है। वह कुछ विस्तारो मे ही, यद्यपि विस्तार भी किसी पात्र का रंग बदलने में बड़े महत्व के होते हैं, हेर फेर कर सकता है। प्रावृतिक उपचार का मूल्य ऐतिहासिक और पौराणिक प्रबन्ध-काव्यो मे भी उतना ही हो सकता है जितना कि काल्पनिक प्रबन्धो में। अतएव दोनो कोटि के प्रबन्ध काव्यो के पात्रो मे अन्तर के लिये कारण स्पष्ट है।

गुप्तजी के प्रमुख-पात्र प्रमुख रूप से तीन कोटियो में विभक्त किये गए हैं—'अजित' तथा 'कल्लू' जैसे काल्पनिक पात्रो के अन्तर मे कवि की मान्यताएं छिपी हुई सी लगती हैं। उनके पौराणिक अथवा ऐतिहासिक पात्रो के चरित्र मे तुलनात्मक दृष्टि से विशेष परिवर्तन दृष्टिगोचर नहीं होता है यही कारण है कि राम, लक्ष्मण, भरत सीता, युधिष्ठिर और अर्जुन आदि के चरित्र मे कोई विशेष अन्तर नही आ पाया है। ऐसे पात्र जो इतिहास या पुराणो की चारित्रिक भूमिका में उपेक्षित से रहे हैं, उनके उत्कर्ष में गुप्तजी ने मन मानी स्वतन्त्रता ले ली है। उर्मिला और यशोधरा के सम्बन्ध मे इस कथन के तथ्य की परीक्षा की जा सकती है।

गुप्तजी के पात्र और वातावरण—

चरित्र के अंकन के लिये आलोचक के पास कवि कृत रचना मे प्रस्तुत वातावरण होता है। रचना मे वातावरण प्रमुख स्थान रखता है। वातावरण मे ही जीवन के भीतरी और बाहरी दोनो रूपो को अवगत किया जा सकता है। इनके प्रतिरूपण का नाम ही तो काव्य कला है। इस कला का सूक्ष्मतम धरातल जीवनतत्व-प्राण-आत्मा-रस है जो भाव भूमिका पर प्रवाहित होता है। इस दृष्टि मे गुप्तजी के प्रबन्ध-काव्यो मे उनके प्रमुख पात्रों का सम्बन्ध वातावरण और उसके प्रतिरूपण के माध्यम मे, गुप्तजी की कला और उसकी आधारभूमि मे निहित रस-भूमिका से भी हो जाता है।

उपर्युक्त विवेचन मे यह स्पष्ट है कि प्रबन्ध काव्यो मे वातावरण का प्रस्तुतीकरण पात्रो के चारित्रिक विकास के लिए किया जाता है। अतएव पात्रो का प्रबन्ध काव्यो के स्वरूप निर्माण मे बहुत कुछ हाथ होता है। गुप्तजी संस्कृति प्रिय कवि थे, किन्तु इसके साथ साथ वे आधुनिकता के प्रति उदासीन भी न थे अतएव उनको ऐसे पात्रो को चयन

करना पडा जो भारतीय संस्कृति के स्तम्भ रहे हो और उनके माध्यम से संस्कृति के सन्देश के साथ साथ आधुनिकता को भी खोज निकाला जा सके। भारतीय संस्कृति को प्रदर्शित करने वाले पात्र उन्हे इतिहास अथवा पुराणो से मिले क्योकि उनमे ही भारतीय संस्कृति निहित है। यह कहा जा चुका है कि पुराण अथवा इतिहास प्रथित पात्रो के विषय मे कवि अधिक स्वतन्त्र नही होता है। अत. गुप्तजी को भी अपने पात्रो के अनुकूल ही काव्य रूप निर्धारित करना पडा। पात्रो के सम्बन्ध से सस्कृति का भव्य-चित्र केवल प्रबन्ध काव्यो मे ही सम्भव था यही कारण हैं कि प्रायः गुप्तजी ने प्रबन्ध काव्य ही लिखे हैं।

गुप्तजी के काव्य-रूप के निर्धारण में उनके प्रमुख पात्रो का विशेष योग है। कवि ने राम तथा युधिष्ठिर जैसे पौराणिक-पात्रो का चयन किया है जो कि भारतीय सस्कृति के स्तम्भ हैं उनके जीवन का प्रतिरूपण सस्कृति के उन्मेष का प्रेरक बनता है अतएव गुप्तजी ऐसा चित्र प्रस्तुत करने के लिए प्रेरित हुए हैं, जिससे सामाजिक आदर्श प्रस्तुत होते हैं। ये आदर्श गुप्तजी के प्राय. सभी पात्रो मे मिलते हैं। उनके केवल ऐतिहासिक एव पौराणिक काव्यो में ही संस्कृतिक चित्र नही उभरे, वरन् अजित जैसे काल्पनिक प्रबन्धो में भी इन चित्रो का प्राचुर्य है। 'अजित' इतिहास या पुराण की प्राचीनता से हमे प्राप्त नही हुआ फिर भी उसकी चारित्रिक पीठिका मे सास्कृतिक आदर्शों का वर्ण-वैभव स्पष्ट है।

गुप्तजी के सभी प्रबन्ध चाहे वे महाकाव्य, खण्ड काव्य या एकार्थ काव्य में हो मानव-सम्बन्धो की सुरक्षा मे तत्पर दिखायी देते हैं। वर्णाश्रम के प्रतीयमान भेदो में भी भारतीय संस्कृति मानव भ्रातृत्व की इकाई को ही सामने लाती है। इसीलिए इनके प्रबन्धो का रूप जो कुछ भी रहा हो किन्तु आदर्श का रूप भिन्न अथवा विगलित नही है।

वातावरण और चरित्र विकास —

वातावरण के नियमन मे भी गुप्तजी के प्रबन्ध-पात्रो का विशेष योग रहा है। प्रबन्धो मे इन्हे ऐसे वातावरण को प्रस्तुत करने का उपक्रम करना पडा है जिसमे प्रमुख पात्र ही भलीभाति प्रकाशित हो सके। उदाहरणार्थ पचवटी को लिया जा सकता है। जहा वन का एकात भयानक वातावरण साहस और उत्साह के साथ भ्रातृभक्ति की पावनता को सिद्ध करता है। इसी प्रकार के उदाहरण अन्य काव्यो मे भी बतलाये गये हैं। गुप्तजी के प्रबन्धो की मूल भित्ति तो परम्परागत वातावरण में ही निर्मित हुई है और उसी मे भारतीय सस्कृति के मूल रूप को देख सकते हैं, किन्तु विस्तारो मे जहा कही नवीनता लायी गई है वह भी भारतीय सस्कृति की परम्परा की ही एक कडी जैसी प्रतीत होती है, चाहे उसे युग प्रवृत्ति का भी रगीन पुट लग गया हो। 'साकेत' में सीता की श्रमशीलता न केवल श्रम के मूल्य का प्रचार कर रही है वरन् इसमे सीता के शील का अवलोकन भी किया जा सकता है।

पात्र और रस—

कहने की आवश्यकता नही कि प्रमुख-पात्र कवि के आदर्श या वातावरण की उपयुक्तता के ही निर्धारण के साधन नही होते वरन् काव्य की भावभूमि और कवि कौशल की कसौटी भी होते है। 'साकेत' के प्रमुख पात्र है— राम, उर्मिला, लक्ष्मण एव भरत। गुप्तजी उर्मिला को वस्तु कथा के रग-मच पर प्रधानता देना चाहते थे, किन्तु राम में जो आदर्श प्रतिष्ठित हो चुके है, जो इतिहास और पुराणो की भूमि पर मूलबद्ध हो चुके हैं, गुप्तजी उनके प्रति सम्मान भी रखना चाहते थे। अतएव उनके सामने एक विशेष परिस्थिति हो गई। एक ओर तो उर्मिला और लक्ष्मण के बीच कथावस्तु की पृष्ठभूमि मे शृंगार के लिए ही अवकाश था, उधर राम और लक्ष्मण के बीच लक्ष्मण के भक्ति उत्साह का भी प्रमुख स्थान रह चुका है। इस कारण कवि ने दुधारी वसिलता के प्रयोग करने की चेष्टा की है, किन्तु सफलता न मिल सकी। कवि दोनो के प्रयोग की द्विविधा मे काव्य के लक्ष्य को खो बैठा। इसीलिए 'साकेत' के पाठक के समक्ष यह प्रश्न है कि साकेत मे शृंगार अगीरस है अथवा वीर ?

फिर भी यह तो असिद्ध नही होता कि प्रमुख पात्र रस-विधान मे प्रमुख योग नही देते प्रत्युत उक्त विवेचना से यही प्रमाणित होता है कि रस विधान का प्रमुख-पात्रो से गहन सम्बन्ध है और अन्य पात्र भी, चाहे अगीरस के विकास मे अगरूप मे ही योग देते हो, योग अवश्य देते हैं। गुप्तजी के पात्रो का उनके रस-विधान से यही सम्बन्ध रहा है। विष्णुप्रिया का उत्साह भक्ति रस के उत्कर्ष का साधन है। 'बक संहार' मे करुणा ने उत्साह का निरन्तर योग दिया है, जिसमे त्याग और बलिदान की भावना भी लहराती दृष्टिगोचर होती है। इनके पुट से जो वातावरण प्रस्तुत हुआ है उसमे 'असहाय रक्षा' का आदर्श और वीर रस का अनूठा परिपाक हुआ है।

गुप्तजी के प्रबन्ध काव्य-गत रस —

गुप्तजी क प्रमुख पात्रो मे प्राय. उत्साह तथा तथा कर्मण्यता की भावना है अतः उनके ऐतिहासिक एव पौराणिक प्रबन्ध काव्य प्राय. वीर रस से ही ओतप्रोत है। कहीं कहीं भक्ति रस के भी उदाहरण मिलते हैं। उनमें भी करुणा, उत्साह आदि का प्रचुर योग है। गुप्तजी के इन कर्मण्यशील पात्रो के उत्साह के कारण कुछ अधिकांश नारी पात्रो के हृदय मे रति का भाव जाग्रत होता है इसीलिये तो 'विष्णुप्रिया', 'सैरन्ध्री' जैसी रचनाओ को छोडकर अन्य नायिका प्रधान काव्यो मे शृंगार रस की अविरल धारा बहती दिखाई देती है। अतएव गुप्तजी के प्रबन्ध-काव्यो मे प्रमुख रूप से वीर तथा शृंगार रस पाये जाते हैं। गुप्तजी का शृंगार परिष्कृत है उसका भी श्रेय उनके प्रबन्धो के प्रमुख पात्रो को है। पौराणिक पात्र जो भारतीय सस्कृति के प्रतिनिधि बनकर आते है उनमें अश्लील शृंगार की कल्पना करना व्यर्थ हैं, यदि कर भी ली जावे तो उन पात्रो के मूल चरित्र मे अन्तर

के लिए अवकाश हो सकता है। गुप्तजी के उपर द्विवेदी जी का प्रभाव खोजने वाले इसे भले ही द्विवेदी जी का प्रभाव कहें किन्तु इस शृगार के परिष्करण में पात्रो का कम महत्त्व नही।

यह कहने की आवश्यकता नही कि गुप्तजी की वृत्ति अतीत भारतीय सस्कृति के चित्रण मे रमी है किन्तु सामयिक-परिस्थितियो से भी नही बचा जाता। वे प्राचीनता मे नवीनता के खोजने वाले कवि हैं, इसीलिए तो उनके प्रवन्धो के प्रमुख-पात्र प्राचीन होते हुए भी खडी बोली बोलते हैं, जो उनके समय मे प्रचलित नही थी। काव्य मे पात्रो के माध्यम से कवि या लेखक की भाषा बोलती है। प्रसाद के नाटको के निम्न वर्गीय पात्र जिस प्रकार उनके व्यक्तित्व के कारण सर्वत्र संस्कृत-निष्ट भाषा बोलते हैं उसी प्रकार गुप्तजी के खण्ड तथा महाकाव्यो के सभी प्रमुख-पात्र खडी बोली बोलते हैं। ऐसा ज्ञात होता है कि अतीत के परिचालक पात्रो के अन्दर से गुप्तजी बोल रहे हो। अत. गुप्तजी के सारे प्रवन्ध काव्यो में खडी बोली व्यवहृत हुई है।

गुप्तजी के प्रबन्ध काव्यों की विशेषताएं —

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि पात्रो के प्रभाव के कारण ही गुप्तजी के प्रबन्ध काव्यो में कुछ विशेषताए आगई हैं जिनका विवेचन इस प्रकार किया जा सकता है:—

१: प्रबन्धो के कलेवर पर पात्रो का प्रभाव —

गुप्तजी के प्रवन्धो को मूल रूप से दो भागों में विभक्त कर सकते हैं, महाकाव्य तथा खण्डकाव्य। 'जयभारत' और 'साकेत' क्रमश. युधिष्ठिर तथा राम की जीवन-कथा को लिए जाने के कारण दीर्घकाय हो गए है तो अन्य खण्ड काव्य — हिन्दू, विकट भट, गुरू तेग बहादुर, शकुन्तला आदि खण्डकाव्य पात्रो के सम्बन्ध से छोटे हो गए हैं।

२: वातावरण निर्माण मे पात्रो का प्रभाव —

गुप्तजी के समस्त प्रवन्धो में धार्मिक तथा वीरता पूर्ण वातावरण का चित्रण हुआ है, जिसका श्रेय पात्रो को ही है।

३. प्रबन्ध काव्यो मे रस —

गुप्तजी के समस्त प्रवन्धो मे प्रमुख रूप से वीर और शृंगार रस पाये जाते हैं। इनका निर्वाह कवि ने अपने पात्रो की प्रवृत्ति देख कर किया है।

४: खडी बोली का प्रयोग —

गुप्तजी के सारे प्रवन्ध काव्यों मे खडी बोली का प्रयोग हुआ है यद्यपि इसमे उनकी ही अभिरुचि छिपी है, किन्तु वह पात्रो के माध्यम से अभिव्यक्त हुई हैं। इन विशेषताओ के अतिरिक्त कुछ अन्य सामान्य विशेषताएं भी पाई जाती हैं।

प्रबन्धों के क्षेत्र मे नई प्रवृत्तियों का आग्रह —

द्विवेदी जी से पूर्व काव्य मे, शृंगार रस बहुमान्य होगया था। उसमे स्थूलता बढ गई थी, जो अश्लीलता की सीमा तक पहूँच गई थी। इसके परिष्कार की आवश्यकता थी। द्विवेदी जी ने इसका अनुभव किया और वे इसके विरोधी बन गये। उन्होने काव्यो मे से ऐसे विषयो का वहिष्कार कर दिया जो शृंगार को प्रेरणा देते थे। अतएव विषय और रस दोनो ही प्रभावित हुए। इस प्रभाव की छाप गुप्तजी पर भी पडी। यही कारण है कि गुप्त जी के प्रबन्ध-काव्य आदर्शवाद तथा सास्कृतिक पीठिका पर तैयार होते हैं और शृंगार सामग्री परिष्कृत है।

प्रबन्धो के क्षेत्र मे प्रसादजी ने नवीन प्रवृत्तियो को ग्रहण किया और प्राचीन मान्यताओ मे उत्क्रान्ति उपस्थित की किन्तु गुप्तजी ने नवीन प्रवृत्तियो को ग्रहण करने के साथ साथ प्राचीन काव्य-परम्पराओ का भी पालन किया। जहाँ 'कामायनी' प्रबन्ध काव्य गीति-युक्त रचना हैं वहा 'साकेत' मे भी गीतो का प्रयोग किया गया है। इन दोनो काव्यो के स्रष्टाओ मे से किस को अधिक सफलता मिली, यह एक पृथक प्रश्न है। किन्तु नि सन्देह 'साकेतकार' ने नई प्रवृत्ति को अपनाया है।

इसके साथ साथ गुप्तजी के प्रबन्ध काव्यो मे भी प्रयोग वादी रचनाओ के स्वरूप को देखा जा सकता है। जहा 'धर्मवीर-भारती' की 'कनुप्रिया' प्रयोगवादी रचना है वहा गुप्तजी की 'यशोधरा'।

६: गुप्तजी के प्रबन्ध काव्यो मे रीतिकालीन प्रभाव —

'यशोधरा' और 'साकेत' गुप्तजी के दो बडे प्रबन्ध काव्य हैं किन्तु अधिकांश विद्वानो का यह मत है कि इनमे कथा-सूत्र विशृंखल हो जाता है। इसका एक मात्र कारण यह है कि इन काव्यो के प्रणयन के समय गीति-काव्य का समय था। गुप्तजी भी उसके प्रभाव से अछूते नही रह सके अथवा उन्होने आधुनिक काव्य से रीतिकाव्य की ओर मुड कर देखा है इन दोनो कारणो से ही उन्होंने प्रबन्धो मे गीतो को अपनाया परिणामत कथा-वस्तु विशृंखल सी प्रतीत होने लगी है। फिर भी गीतो के हृदय मे से कथा-प्रवाह खोजा जा सकता है। हाँ 'जयभारत' मे गुप्तजी की इस त्रुटि के लिए स्थान है।

गुप्तजी के प्रबन्धो को विषय की दृष्टि से प्रमुखत तीन पौराणिक, ऐतिहासिक और सामाजिक भागो मे विभक्त कर सकते हैं। रूप की दृष्टि से दो महाकाव्य और खण्ड काव्यो मे विभक्त कर सकते हैं।

उपर गुप्तजी के प्रबन्ध काव्यो पर पात्रो के सम्बन्ध से तथा अन्य सामान्य विशेषताओ को ध्यान मे रख कर प्रकाश डाला गया है। अब पात्रो के दोनो प्रकारो की वर्गगत तथा सामान्य विशेषताओ पर प्रकाश डालना आवश्यक प्रतीत होता है।

गुप्तजी के प्रबन्धों के प्रमुख पात्रों की प्रावृत्तिक विशेषताएं—

गुप्तजी के पात्र कुछ न कुछ चारित्रिक विशेषताए लेकर अवतीर्ण हुए है। उनकी कुछ निश्चित प्रवृत्तिया रही हैं। इन प्रवृत्तियो के आधार पर गुप्तजी के प्रमुख पात्रो को बारह वर्गों मे विभक्त कर सकते हैं। प्रथम वर्ग मे उर्मिला, 'रग मे भग' की राजकुमारी शकुन्तला सैरन्ध्री, यशोधरा तथा विष्णुप्रिया को लिया जा सकता है। इन सभी नारी पात्रो मे चारित्रिक आदर्श की प्रवृति पाई जाती है। द्वितीय वर्ग में धार्मिक प्रवृत्ति वाले पात्रो को ले सकते हैं जिनमे युधिष्ठिर गुरुकुल के गुरुजन, मुहम्मदशाह, इमामहुसैन, तथा चैतन्य आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। देश प्रेम को ग्रहण कर चलने वाले पात्रो मे कुम्भ जगदेव, अजित आदि प्रेक्षणीय है जो तृतीय वर्ग के पात्र कहे जा सकते हैं। चतुर्थ वग के पात्र हैं जो जीवन मे कर्मशील रहे हैं। इनमे अर्जुन, कल्लू, भीम, भीष्म पितामह, सवाई सिंह और सिद्धराज के नाम लिए जा सकते हैं। पंचम वर्ग मे सेवा वृत्ति वाले लक्ष्मण तथा भीम आदि को सम्मिलित कर सकते हैं। इसी प्रकार शक्ति तथा राम षष्ठम वर्ग के पात्र हैं, जिनकी प्रवृत्ति दुष्ट-दमन को ओर अधिक रही है। कुन्ती को पुरातन प्रियतावादी पात्र कहकर सप्तम वर्ग मे स्थान दे सकते हैं। त्यागशील प्रवृतिवाले पात्रो मे भीष्म पितामह जगदेव तथा कुन्ती को लिया जा सकता है। ये पात्र अष्टम वर्ग के हैं।

कल्लू, हिडिम्बा आदि पात्रों को प्रगतिशील पात्रो की कोटि मे रखा जा सकता है जो पात्रो का नवम वर्ग है। नहुष, जोनस, इउडोसिया और हिडिम्बा आदि पात्रो मे योनि प्रेम का प्राधान्य है और यह पात्रो का दशम वर्ग है। एकादश वर्ग मे अजित को लिया जा सकता है जो समानता की प्रवृति पर अधिक बल देते हुए दिखाई देते हैं।

पुरुष-पात्रों की सामान्य विशेषताएं —

गुप्तजी के पुरुष-पात्रो में उत्साह वृति सामान्यत पाई जाती है। इस उत्साह की वृति के सहारे ही वे भारतीय गौरव तथा सस्कृति की रक्षा करते दिखाई देते हैं। पुरुष-पात्र प्राय. शक्तिशाली हैं, उनकी शक्ति का प्रयोग पर-रक्षण के लिए हुआ है। राम एक ओर भारतीय सस्कृति के सिद्धान्तो को लेकर चले हैं। जिनमे शरणागतवत्सलता, धार्मिकता, आदर्श आदि हैं, तो दूसरी ओर अपनी अपार शक्ति से दुष्टों का दमन तथा दलन भी करते हैं। ये पात्र कवि के लक्ष्य की पूर्ति के माध्यम वन कर प्रयुक्त हुए हैं।

नारी-पात्रों की सामान्य विशेषताएं

गुप्तजी के समस्त नारी पात्र चारित्रिक आदर्श को प्रधानता देते हैं। यशोधरा, उर्मिला, सैरन्ध्री, शकुन्तला आदि में पतिपरायणता का गुण सामान्यतया विद्यमान है। इन सभी का प्रेम एक निष्ट है। पति से विमुक्त होने पर इन का स्थायी भाव रति.

विप्रलम्भ श्रृंगार को जन्म देता है। किन्तु यह ध्यान रखने की आवश्यकता है कि ये सभी स्वकीया है। बिहारी की नायिकाएं तो किसी के भी विरह मे विदग्ध हो सकती हैं किन्तु उन्होने अपने पति के अतिरिक्त पर पुरुष की ओर दृष्टि-निक्षेप करना सीखा ही नही है। इसके अतिरिक्त वे शक्तिशालिनी भी हैं। अतः स्वभावत: इनमे शील, शक्ति तथा सौन्दर्य का समावेश हो गया है।

सामान्य विशेषताओ को लेकर चलने वाले पुरुष-पात्रो मे राम तथा नारी-पात्रो मे उर्मिला को प्रमुख रूप से लिया जा सकता है। राम मे जहाँ शक्ति है वहाँ उनमे सस्कृति प्रियता भी है। उर्मिला जहाँ अबला होकर अश्रु विमोचन करती है वहा सेना का सचार करने को भी उद्यत हो जाती है।

सन्देश —

गुप्तजी के प्रबन्ध काव्य हमको सास्कृतिक सन्देश के साथ साथ कुछ नवीन उद्भावनाए भी दे जाते है। उनमे जहाँ एक ओर प्राचीन कथा को ग्रहण किया गया है, वहा दूसरी ओर आधुनिक युगीन काव्यो की प्रवृतियो का समन्वय भी हुआ है। उसी प्रकार गुप्तजी के पात्र जहाँ पुराणो तथा इतिहास से आने के कारण प्राचीन है वहा वे आधुनिक युग के मानव की विशेषताओ से भी आँकलित हैं। उदाहरण के लिए नहुष पौराणिक दृष्टिकोण से प्राचीन पात्र है किन्तु मनोविज्ञान के आधार पर वह आज के मानव का प्रतीक है जो उन्नति के समय अपना मानसिक सन्तुलन खो देता है।

इसके अतिरिक्त आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी जी को परिष्कारवाद तथा महात्मा गाँधी के सत्य, अहिंसा, अछूतोद्धार, नारी-सम्मान आदि का प्रतिफलन गुप्तजी के काव्यो मे भलीभाति हुआ है। वे इतने लम्बे समय से हिन्दी साहित्य को योगदान करते रहे है और अभी उनकी लेखनी ने विराम नही लिया है। सब मिलाकर यह कहा जा सकता है कि गुप्तजी के काव्यो से जो प्रभाव हिन्दी पाठको पर पडा है उसमे गुप्तजी, उनके काव्य तथा पात्रो के प्रति सम्मान का भाव झलकता है। विष्णु प्रिया के उपरान्त कोई गुप्तजी की रचना प्रकाश मे नही आई है। वे अपने कवि रुप को सफल तथा सार्थक करने मे पूर्ण रूपेण समर्थ हुए है अन्त मे गुप्तजी के प्रति कहे गये आचार्य द्विवेदी जी के इन विचारो के साथ हम भी प्रस्तुत निबन्ध को समाप्त करते हैं।

'येनेदमीदृशमकारि महामनोज्ञ,
शिक्षान्वित गुणगणाभरवेमृ्त च।
काव्य कृती कविवर. स चिरायुरस्तु,
श्री मैथिलोशरण गुप्त उदारवृत.।